चाँदा सेठानी

चाँदा सेठानी

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

GIFTED BY

राजस्थानी के यशस्वी कवि
एवं मनीषी भाई
श्री कन्हैयालाल सेठिया को
सादर

मैं इतना ही कहूँगा

चाँदा सेठानी राजस्थानी परिवेश और जन-जीवन की एक सीधी-सादी कथा है। जो राजस्थानी रोजी-रोटी की खोज में देश के अविकसित कोनों में गये, दुर्धर्ष किया, निश्चितता से रहे—उसके पीछे राजस्थानी नारियों का बड़ा त्याग, संयम और धैर्य है। चाँदा सेठानी स्वतंत्रता पूर्व उसी परिवेश की प्रतीक चरित्र है। किसी व्यक्ति विशेष से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मूलतः उपन्यास राजस्थानी भाषा में लिखा गया है। अतः भाषा व अभिव्यक्ति की प्रकृति वैसी ही हो जाना स्वाभाविक है। पाठकों की राय की प्रतीक्षा रहेगी।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

काले खरगोश-सा कोमल अँधेरा बीकानेर की ईदगाह बारी के बाहर-भीतर और चाँदा सेठानी की तीन मंजिली हवेली पर फैल गया पर चाँदा सेठानी को सहसा अनुभव हुआ कि शोग में ओढी जाने वाली 'लालर' किसी दुष्टात्मा ने उसकी हवेली पर फैला दी है और सारी हवेली एक विचित्र शोक में डूब गयी है।

पिछले तीन दिनों से चाँदा सेठानी अत्यन्त ही उद्विग्न और आहत थी। आक्रोश और आवेश उसके भीतर भुरट के काँटों की तरह बार-बार चिपककर उसे दंश-पीड़ा दे रहे थे। उसे लग रहा था कि अँधेरे के कई टुकड़े उसके भीतर प्रेतात्मा की तरह घुस गये हैं और उत्पात मचा रहे हैं!

यह भी सही था कि पिछले तीन दिनों से उसे इतनी उकताहट हो रही थी कि सब कुछ छोड़कर भाग जाने को जी चाह रहा था। सारी रुचियाँ यकायक मर गयी थी। ऊब, खालीपन और झुंझलाहट!

बस, यंत्रवत् वह सारे कार्य कर रही थी जैसे सब कुछ विवशतावश कर रही है।

उसकी नौकरानी कासी जाटणी भी सब कुछ जानते हुए भी अनजान बनी हुई थी। सेठानी के भीतर कौन-सी चीज तूफान मचाये हुए है, इससे वह खूब परिचित थी पर वह उस प्रसंग को अपनी जबान पर नहीं ला पा रही थी।

वह सास-बहू के झगड़े में पड़ना नहीं चाहती थी। वह जानती थी कि उसका किसी के पक्ष में बोलना दूसरे पक्ष को नाराज करना है अतः वह एकदम तटस्थ रही।

जब साँझ रात में घुलने लगी तब उसने सेठानी के मालिये (कमरे) में प्रवेश किया। वहाँ अब भी घुप अँधेरा था।

उसने बत्ती जलाते हुए कहा, "सेठानी जी ! आपका अँधेरे मे जी नहीं घुटता ? मेरा तो दम घुटने लगता है !" उसने चारो ओर दृष्टि दौडाकर, थोडा चौंककर पुनः कहा, "अरे आपने तो गोखें (खिड़कियां) भी नहीं खोले हैं ! कैसी सड़ियल गरमी पड रही है !"

और उसने सारी खिड़कियाँ खोल दी ।

सेठानी तब भी निरुत्तर रही ।

न हिली और न डुली ।

इस बार कासी उसके काफी नजदीक आ गयी । अपनी आँखों मे गहरा अपनापन लाकर बोली, "सेठानी जी ! साँझ रात मे घुलने लगी है और आप पत्थर की देवी ज्यूं बैठी हैं । आखिर ऐसे कैसे काम चलेगा ? समय बदल गया है फिर आप क्यूं नही बदलती ।"

सेठानी ने एक बार जलती दृष्टि से कासी को देखा । उसकी आकृति पर भैंस की सूखी खाल-सा कठोरपन आ गया । ललाट पर बल डालकर तीखे स्वर मे बोली, "यह भी सच है कि चांद-सूरज नही बदले हैं ? समय ने उनके साथ ज्यादती क्यों नही की ?"

"वे तो परमात्मा है ।"

"क्या मैं अपने बेटे-बहू के लिए परमात्मा नही ? अपने स्वाभिमान और परम्परा को छोडकर मुझे कुछ भी चोखा नही लगता ।"

"आप सही फरमाती हैं । अगर आपके बेटे ने आपकी बात नही मानी तो ?"

"हाँ, जब अपनो में ही खोट हो तो क्या किया जाय ? मगर मैं अपनी हवेली की रीत-रिवाज, मान-मर्यादा और नियमों को नही टूटने दूंगी । आज दूसरे लोग हमारे घर को एक आदर्श के रूप मे लेते हैं । तुम तो जानती हो कि स्वयं अन्नदाता ने हमें पाँव मे सोना बख्श रखा है । मैं और मेरी बहू ही पाँवों में सोना पहन सकती हैं । इतने बड़े घराना की बहू सब कुछ मटियामेट करने पर उतारू हो रही है ! तुम तो जानती हो, उन देवतुल्य मेरे पति की आत्मा को इससे कितना कष्ट पहुंचेगा ? क्या मुझे उनकी आत्मा को कष्ट पहुँचाना चाहिए ? यह धर्म की बात है ?"

"नही ।"

"यदि मैंने अपनी वहू को परदेश जाने दिया तो उनकी आत्मा को कष्ट होगा सो होगा ही, मुझे भी पाप का भागी बनना पड़ेगा।"

"पर बहू भी तो अपना हठ छोड़ने को तैयार नहीं है। इधर आप सुलग रही है और उधर बहू। वह भी मालिये में उदास-उदास-सी पड़ी है। आप दोनों के बीच का फैसला बिना दामोदर बाबू के आये हो ही नहीं सकता।"

"मैंने उसे तार दिलवा दिया है कि मैं बीमार हूँ। वह तार पढ़ते ही चला आयेगा। तुम तो जानती हो कि वह मुझे (मेरा वेटा) कितना प्यार करता है। वह मेरी आज्ञा को टाल नहीं सकता। भले ही मैं अपनी बीनणी (बहू) के लिए परमात्मा न होऊँ पर मैं अपने लाडले बेटे के लिए तो वो हूँ ही।"

"हाँ, यह ठीक है, फिर गुस्से को थूककर सुख-शांति से रहिए। छोटे बाबू के आते ही सब कुछ ठीक-ठाक हो जायेगा।

सेठानी ने दीर्घ उच्छ्वास लिया। उसके चेहरे पर थोड़ी कोमलता आ गयी। वह बोली, "कासी! मुझे हर अनुचित बात खारी जहर लगती है। कम-से-कम बीनणी को यह तो सोचना चाहिए कि आखिर मैं उसकी सास हूँ, मुझे सास के सामने कैसे बोलना चाहिए? चरं-चरं बोलती ही जाती है? क्या मैं कभी बहू नहीं थी? मैं भी तो सास के आगे वाली बहू रही हूँ। मजाल है कि कोई मेरी आवाज भी सुन ले। कोई पराया मर्द पाँव का नख भी देख ले! एकदम मर्यादा में रहती थी।···तोबड़ा (मुँह) उघाड़ कर इधर-उधर नहीं फिरती। कभी बहन के तो कभी मासी के, कभी नानी के तो कभी भायली (सहेली) के जाना, यह कौन-सी भली लुगाइयों के लक्षण हैं? कोई भी हो, मर्यादा के बाहर जाना अच्छा नहीं कहलायेगा।"

कासी ने देखा सेठानी की आकृति पर पीड़ा दपदप करने लगी है। आँखों में व्यथा का फैलाव अनंत-सा हो गया। होंठ आन्तरिक व्यथा से सूख गये हैं।

"हाँ सेठानीजी, आप सोलह आना सच कहती हैं। आपने घर की मरजादा के लिए जो त्याग-तपस्या की, वह कलियुग में विरला ही स्त्री

कर सकती है। पहाड़-सी जवानी को सीने पर टिकाये आपने जो कुछ झेला है, इस कलियुग में हर एक के वश की बात नही।"

सेठानी के भीतर बैठा हुआ दंभ जाग गया। उसके शरीर मे एक अकड़ाव-सा आया। वह जरा अपनी रीढ़ की हड्डी को सीधा करके बोली, "केवल मैं ही नही, उस समय महिलाओं की पूरी पीढ़ी ने ही मुझ जैसा त्याग किया था। छगन चोपडा की बहू, मदन लाल डागा की बहू··· रामनाथ मेहता की बहू, हरिकिसन बागडी की बहू, मूलचंद बिस्सा की बहू, रामरतन पुरोहित की बहू, केदारनाथ व्यास की बहू, सुगनचद मूधडा की बहू···नामों की एक लम्बी कतार है। इन स्त्रियों ने अपने जोवन के हिलोरे मारते दिनों को बिस्तरों पर करवटें बदलते हुए बिताए है। तारे गिन-गिनकर रातें गुजारी हैं—जब चौमासे मे आकाश काले-काले मेघों से भरा रहता था। सावन की मीठी फुहारें शरीर को भिगोकर एक अजीब-सी जलन पैदा करती थी तब मन बरबस गा उठता था—

साजन घर आवोजी
म्हलां में डरपे सुन्दर ऐकली*

कौन जान सकता है—हमारी व्यथा-कथा, पर किसी भी बहू-बेटी मे लक्ष्मण-रेखा को पार करने की हिम्मत होती थी ? नही·· नही···नही। एकदम धर्म और मर्यादा में रहना पड़ता था। अब कैसा समय आया है कि आदमी धर्म, मर्यादा और कुल गौरव से बड़ा अपने को समझने लगा है। अपनी सुख-सुविधाओं को मानने लगा है।"

कासी ने बात का प्रसंग बदलते हुए कहा, "सेठानीजी ! आप हाथ-मुँह धोकर कुछ खा-पी लीजिए। मै विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि आपके खाने के बाद बहूजी जरूर खाना खा लेंगी।"

सेठानी उठती हुई बोली, "समझदार की ही मौत है। जिसको लाज आती है, उसे अपना हठ छोडना ही पडेगा, पर मैं अपना आत्मसम्मान किसी भी कीमत पर नही बेच सकती। मुझे हठी बहू ही पसन्द नही है।"

और वह उठकर स्नानघर की ओर चल पड़ी।

---

* प्रीतम घर आइए, महल में तेरी सुन्दरी अकेली डरती है।

रात काफी गहरी काजल-सी काली हो गयी थी। 9400

3.4.87

□

□

चिलचिलाती दोपहर।

टोपसी से आकाश में सूर्य नगीने-सा चमक रहा था। गर्म हवाएँ चल रही थी इसलिए चाँदा सेठानी ने अपनी खिड़कियाँ बन्द करवा दी थीं। पखा चल रहा था। धूप के कई टुकड़े चोरों की तरह किवाड़ों की दरारों में से आ रहे थे।

सेठानी मोटी जाजम पर बैठी थी। उसके पास धार्मिक पवित्र ग्रंथ 'सुख-सागर' रखा हुआ था। एकाएक पर्दा हिला। प्रकाश का एक बड़ा टुकड़ा बिल्ली की तरह फदाक मार कर सेठानी पर आ पड़ा। क्षण भर के लिए सेठानी का चेहरा धूप से नहा गया। सेठानी का गोरा रंग उम्र की मार से हलका पड़ गया था। आकृति पर तरेड़ें-सी आ गयी थीं। आँखें बुझी-बुझी-सी लगने लगी थीं। अगले तीन दाँत टूट गये थे, पर चाँदा सेठानी ने उन्हें सोने के बनवा कर लगवा लिये थे। नखी किनारी की श्वेत साड़ी और पेट को ढँकता हुआ कोट (ब्लाउज) कोट की कमरपेटी मे जेब। जेब मे चिकनी सुपारी के टुकड़े और एक नक्काशीदार छोटी-सी चाँदी की डिबिया। उसमें घिसा हुआ तम्बाकू।

सेठानी अकेली थी। चारों ओर सन्नाटे पसरे हुए थे। जरा-सा भी आवाज नहीं थी। जो शोर-गुल था वह उसके अपने भीतर था।

सेठानी चाहकर भी यह नहीं भूल पा रही थी कि उसकी बहू उसको विपाक्त उत्तर देने लगी है।

जब प्यास का अनुभव हुआ तब उसने अपनी नौकरानी काली को बुलाया और कहा, "एक लोटा ठंडा पानी। रतनगढ वाली मटकी का लाना।"

दासी निरुत्तर रही।

वह ताँबे का एक लोटा पानी का भरकर लायी और जाने लगी तो चाँदा सेठानी ने पूछा, "अभी क्या कर रही हो?"

"बर्तन माँज रही हूँ।"

"जब माँझ लो तब इधर आ जाना।"

"ठीक है।"

कासी चलने लगी तो सेठानी ने फिर कहा, "सुन कासी, जरा मुनीम शिव प्रतापजी को बुलाना।"

कासी ने बाहर जाते हुए कहा, "मैं अभी उन्हें भेजती हूँ।"

"जरा जल्दी।"

"ठीक है।"

उसके जाते ही फिर चिपचिपाहट भरा सन्नाटा छा गया। पखे की हवा के बावजूद भी पसीने की एक बूंद सेठानी की गर्दन के पिछले हिस्से से बह कर उसे गुदगुदाती कमर के नीचे तक चली आयी। उसने हाथ से खुजाया।

बाहर कोई भूतोलिया (बवन्डर) भयंकर चक्कर निकालता हुआ रेत, कागज के टुकडे, सूखी पत्तियों को लिये अंतरिक्ष की ओर उड रहा था। उसके कारण काफी मटमैलापन नजर आ रहा था।

अचानक भूतोलिये का एक हिस्सा लावारिस-सा सेठानी के कमरे मे घुस गया। पल भर के लिए उसने कमरे मे भूचाल-सा ला दिया। कई खिलौने पटरियों पर रखे थे, वे गिर गये। धूल ही धूल कमरे मे फैल गयी।

रेत के कुछ कण सेठानी की आँखो मे घुसकर कड़कने लगे।

सेठानी ने अपने धोती के पल्लू से आँखों को पोंछा। चेहरे पर भी कण रड़क रहे थे, उन्हें भी साफ किया।

फिर कासी को पुकारा। कासी ने आते ही कहा, "सत्यानाश हो इस भूतोलिये का···बुहारे हुए सारे घर मे धूल ही धूल कर दी।"

सेठानी ने पल्लू को इकट्ठा करके फूंक से गर्म करके आँखो पर बार-बार लगाया, इससे आँखो से पानी गिरना बन्द हो गया।

कासी खिलौने उठाने लगी तो सेठानी जरा कड़े स्वर में बोली, "चूल्हे मे डाल न इन खिलौनो को। भागकर पानी ला···आँखो में छपाके मारूंगी। धूल गिर गयी है।"

कासी लपक कर नीचे चली गयी। सेठानी बड़बड़ाती हुई पेशाब की

मोरी पर आ गयी। आँख पर वफारा लगाती हुई बड़बड़ा उठी, "इस राम के मारे बीकानेर में अंधड के सिवाय कुछ है ही नहीं, दिन मे पाँच वार झाड़ू-बुहारी करो, फिर भी रेत ही रेत मिलती है।"

कासी पानी का लोटा ले आयी थी। सेठानी ने अपने हाथ मे लेकर दोनों आँखों में छापके मारे। मुँह धोया और दो घूंट पानी भी पिया।

"परेशान हो जाती हूँ मैं तो ?"

कासी ने दार्शनिक की तरह कहा, "परेशान हो जाने से क्या होगा ? सेठानी जी ! हमें तो सारा जीवन इसी बीकानेर में गुजारना है। आधी से अधिक बीत गयी, जो बाकी बची है वह भी इस तरह अन्धड़ सहते-सहते बीत जायेगी।"

सेठानी भीतर आते-आते रुकी। बोली, "कासी बीनणी (बहू) कहाँ है ?"

"सेठानी जी, वह अपनी मौसी के गयी है !"

"मुझे विना पूछे ही ?"

कासी ने कोई उत्तर नही दिया।

"बता, यह भले घर की लुगाइ के लक्षण है ? सास को विना पूछे घर से बाहर कदम रखना कितना वडा कसूर है ? यदि हमारा जमाना होता तो सास ऐसी घुमन्तू बहू को दुवारा घर मे पाँव रखने नही देती। बड़ी निर्लज्ज हो गयी है यह तो !"

कासी ने कहा, "सेठानीजी ! मुंह मे मूंग डालकर बैठी रहिए। किसे नंगा करोगी ? दायी को या बायी को ? किसे भी नंगी करो, नंगी अपनी ही होगी, शर्म अपनों को ही आयेगी, इज्जत घर की ही जायेगी।"

सेठानी चुप हो गयी। खिडकी मे बैठ गयी।

गलियाँ सूनी थी।

ईदगाह बारी की ओर से एक लादे वाला आ रहा था। लादेवाला फोग की लकड़ियाँ ऊँट पर लादे हुए था। लकड़ियों को इतने तरकीब से बाँधा हुआ था कि वह उसके बीच बैठ सकता था।

मोटी छोटी की कमीज, पंछिया, सिर पर चियड़े-चिथडे सा साफा, पाँवों मे फटी-जूनी पगरखी जो बदरग हो गयी थी।

लादेवाले का रंग काला था। गले मे ताम्बे का मादलिया (ताबीज) पहने हुए था। दाएँ हाथ मे चाँदी का कड़ा था।

सारे शरीर पर सयाल उभरे हुए थे। कमीज में लगी कारियाँ भी फट गयी थी। लादेवाले के बाल कधों तक के थे तथा मूँछें बड़ी-बड़ी। हाथ मे लाठी।

वह खरामा-खरामा आ रहा था!

तभी एक घर से एक छोटा सा बालक निकला और उसने उस बंधे लादे मे से एक छोटी-सी लकड़ी निकाल कर भाग गया।

खटका होने पर लादेवाले ने देखा और वह उसके पीछे-पीछे भागा। लडका सरपट भागकर गायब हो गया। लादेवाला बड़बड़ाता रहा।

सेठानी ने इस दृश्य को देखा था। वह नाक भौं सिकोड़कर बोली, "ब्राह्मणो के बेटे पढ़ेंगे-लिखेंगे नही, केवल अऊताई (आवारागर्दी) ही करेंगे। तीन धडा (महाभोज) जीमेंगे और गलियों में भटकते रहेंगे। माँ-बाप इन पर ध्यान ही नही देते हैं?"

लादेवाला हवेली के पास आ गया था।

सेठानी ने उसे पहचान लिया। हीरजी ठाकर था। हीरजी का छोटा भाई वीर जी सेठानी के यहा डयोढीदार था। पिछले पन्द्रह साल से वह सेठानी का चाकर था। सच्चा, कर्त्तव्यनिष्ठ और शक्तिशाली। पहलवान-सा लगता था।

वीरजी को पहलवानी का बड़ा शौक था। सुबह उठते ही वह पहले कसरत करता था फिर दूसरा काम करता था।

वीरजी की ड्यूटी हवेली के आगे बिछे पाटे (तख्ता) पर होती थी! हवेली मे कौन आता है और कौन जाता है, इसका ध्यान रखना, हवेली के भीतर के जनानाखाने का सदेश बाहर तक पहुँचाना और हवेली की सुरक्षा का ध्यान रखना।

इस समय भी वीरजी पाटे पर बैठा था। पाटे पर छाया पसरी हुई थी। एक बोरी बिछी हुई थी। पास मे ही एक चिलम व तम्बाकू रखा हुआ था।

हीरजी को देखते ही वीरजी की आँखों मे चमक आ गयी। आदर-

भाव से बोला "पधारो भाई सा, विराजो ।"

गरीब ठाकुर-वंशज थे-दोनों भाई ।

रेगीस्तान के सूखे और वंजर इलाके के वासी । जहां न पानी था और न पेट भरने के साधन । आदमी बरसात के दिनों में आकाश की ओर याचना भरी निगाहों से देखता था । सब कुछ प्रभु कृपा पर निर्भर था । वर्षा हो गयी तो बाजरी-मोंठ हो गये । थोड़ा बहुत घास हो जाता था । या फिर दूर-दूर तक फोग की झाड़ियां होती थी जिसकी लकड़ियाँ काट-काट कर गाँववाले शहर में बेचने आते थे ! बहुत ही संकटपूर्ण जीवन था । हीरजी ने ऊँट की मोरी (डोरी, को एक तहखाने की कड़ी में बांधा और इतमीनान से बैठ गया ।

हीरजी ने बैठते ही कमीज की फटी बांह से मुंह पोंछा । फिर चियडा-चियडा साफे को उतार कर अपना चेहरा पोंछा । लम्बा साँस लेकर कहा, "भई ! आज तो सूरज आँखें निकाल रहा है । शरीर पर वार-बार लग रहा था कि चीटियाँ रेंग रही है ।"

"भाई सा ! जेठ-वैशाख की गर्मी है न, रोम-रोम जलने लगता है । पानी लाता हूँ ।"

वीर जी भीतर गया ।

पानी का पीतल का लोटा भरकर लाया । पानी ठडाटीप था ।

हीरजी ने ओक से पूरा लोटा खाली करके कहा, "एक लोटा और, बड़ी जोर की प्यास लगी है । आज तो कोसवाली प्याऊ भी बद थी ।"

वीरजी ने कोई जवाब नही दिया । वह फिर भीतर चला गया ।

हीरजी उस ओर देखने लगा ।

एक ओर बडी प्रोल । लकडी पर नक्काशी की हुई । दोनो ओर फूल-पत्तियाँ और छोटे-छोटे हाथी । प्रोल के दो वडे दरवाजे थे । दाएं दरवाजे मे एक छोटा दरवाजा था जो प्रोल के बन्द होने पर खुलता था ।

हवेली लाल पत्थर की बनी हुई थी । तीन मंजिली । आगे का सारा हिस्सा वेल-बूँटेदार, फूल-पत्तियों और अनेक गुम्बन्दों से युक्त था । झरोखो पर इतनी महीन नक्काशी थी कि लोग हवेली को देखने आते थे ।

दूसरी ओर दानखाना था । दानखाने मे हवेली के मुनीम और

रोकड़िया बैठते थे और दूसरी ओर बरसाली थी जिसमे से हवेली के भीतर आया जाता था। ये दोनों लगभग दस-पंद्रह फीट की ऊँचाई पर थे। उनकी सीढियो के पास ही पाटा बिछा रहता था जिस पर बीरजी बैठता था।

मुनीम धोती-कुर्त्ता और टोपी लगाये हुए नीचे उतरा। उसने लाल रग की जूती पहन रखी थी। उस पर तेल लगाया हुआ था—जिस पर धूल की परत जमी हुई थी। एडी के पास कपड़े का टुकडा नजर आ रहा था जिससे लगता था कि जूती नयी है और पाँव को काट रही है।

मुनीम ने हीरजी को देखा तो हीरजी ने खड़े होकर हाथ जोड़े, "मुनीमजी राम···राम ·।"

"राम·· राम·· ठाकरां ! क्या हाल-चाल है।"

उसने बुझे हुए स्वर मे कहा, "खराब ही हैं मुनीमजी, बरखा का नाम नही। कहावत है बिन पानी सब सून ! सून फैली हुई है गाँवों मे। अब तो भगवान मेह बरसा दे तो दाने-पानी का इन्तजाम हो !"

"ठीक कहते हो ठाकरां। पानी बिना कुछ नही। अपने चारो ओर तो धूड़ (रेत) ही धूड है। बस हवाएँ खँ-खँ चलती हैं।"

बीरजी पानी का लोटा ले आया था। हीरजी ने एक ही साँस मे उसे खत्म करके कहा, "एक चोखी कहावत है—सास अपनी बहू को कहती है—अर्थ है —

— मैं जब पैदा हुई तब नहाई, फिर बच्चे के जन्म पर नहाई।

यह 'जल-कूकड़ी' (बहू) कहाँ मे आई जो सदा नहाती है। आप ही सोचिए—जहाँ पानी की ऐसी किल्लत की बातें हों, वहाँ आदमी कैसे जी सकता है?" एक पल रुक कर उसने विनम्र शब्दों मे पूछा, "लादे की जरूरत है?"

मुनीम ने हलके से हँसकर कहा, "जरूरत हो या न हो, आप ले आये हैं तो लेना ही पड़ेगा। रोकड़ियाजी ! ठाकरां को लादे के दो रुपये दे दीजिए। मैं जरा बाजार जा रहा हूँ।"

हीरजी ने आश्वस्त होकर लम्बा साँस लिया। उसके रुखड चेहरे पर ममोलिये-सी मखमली उदासी छा गयी। वह बोला, "बीरजी ! तेरा मुनीम बड़ा ही दयालु है।"

"दयालु भी है और हाथ के खुले भी। गरीब-गुरबे को हाथ का उत्तर देते ही हैं। किसी को हताश नहीं करते। जैसा नाम वैसे गुण शिव प्रताप शिव का प्रताप···।···और गाँव के क्या हाल हैं? सब ठीक-ठाक तो हैं?"

"पहले मैं लादा तहखाने में डाल दूँ, फिर निश्चिंत होकर बातें करेंगे।"

"अब आप यहीं खाना खाकर जाइएगा। रात-बिरात का समय है, देर-सवेर हो गयी तो बेकार कष्ट पाएँगे।"

"चोखो।" हीरजी हवेली के पीछे चले गये। पीछे जाने के लिए एक दस फीटी-गली थी। उस गली में हवेली का जो हिस्सा था, वह सपाट पत्थरों का था। उस सपाट पत्थर की दीवार में लगभग बीस-तीस कबूतरों के घर थे जिससे सारी दीवार बीटों से सड गयी थी।

हीरजी उन पर निगाह डालता हुआ आगे बढ गया। हवेली के पीछे गहरे जमीन के भीतर एक ही साइज के चार गुंभार (तहखाने) बने हुए थे। दो में घोड़ों, गायों-बैलों का घास था और दो में लकड़ियाँ।

हीरजी ने लादा उसमें डाला। इससे पहले ऊँट को जैकाया। लादा उतार कर उसे वापस खड़ा कर दिया। ऊँट को उठने-बैठने में तकलीफ हुई अतः वह दो-तीन बार अरड़ाया।

हीरजी ने एक बार डिचकारी के साथ ऊंट को फिर जैकाया। 'पलाण' को ठीक किया। लाठियों को मूंज से कसा और हवेली के आगे आ गया।

चाँदा सेठानी बरसाली में खड़ी थी। उसने खिडकी से झाँक कर कहा, "बीरजी! जरा फरसिये को जाकर कहिए कि इक्का जोड़ लाये। मुझे मंदिर जाना है।"

"हुकम।"

वीरजी हवेली से थोड़ी दूर पर स्थित कोटडी गया। उसमें रथ, इक्का और बग्गी रखे जाते थे। घोड़े और बैल बँधते थे। दो साइस फरसिया और मनिया थे। एक जाटणी झाड़ू-बुहारी और गोबर थापने का काम करती थी।

वीरजी ने फरसिये से कहा, "सेठानी जी, इक्का मँगवा रही हैं, मंदिर जाना है।"

विधवा सेठानी, सफेद धोती, सफेद ब्लाउज पहनती थी। उसके हाथ में सोने की चार-चार चूड़ियाँ थी। नाक-कान नगे थे। तिणखा (काँटा) नाक में माहेश्वरी विधवा पहन नहीं सकती। गले में सोने की ताँत में गूँथी तुलसी की कंठी थी। ललाट पर श्री नाथजी के पेड़े का टीका। एक दम सादा भेष।

जब छतरी वाला इक्का आ गया तो सेठानी हवेली से नीचे उतरी। उसके पीछे नौकरानी कासी थी। कासी ने हलके पीले रंग का लहंगा-ओढ़ना पहन रखा था और काँचली पर कुर्ती पहन रखी थी।

हीरजी हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। सेठानी ने पूछा, "कैसे हैं हीरजी?"

"आपकी दया से जीते हैं सेठानीजी! आपका दिया खाते हैं और जिन्दगी गुजारते हैं।" हीरजी ने अत्यन्त ही शालीनता से कहा।

"नहीं हीरजी, कोई किसी का दिया नहीं खाता, सब अपने-अपने भाग्य का खाते हैं। भगवान का दिया हुआ खाते हैं। बंदे की क्या बिसात है कि वह किसी को मुट्ठी भर दे दे।"

और सेठानी इक्के पर चढ़ गयी।

दूसरी ओर कासी बैठ गयी।

इक्का चल पड़ा।

हीरजी और वीरजी पाटे पर बैठे हुए चिलम पीने लगे!

□

सुलोचना लौट आयी थी।

वह बग्गी में गयी थी। बग्गी से उतरते ही उसने घूँघट निकाल लिया।

गोरा रंग, छरहरा बदन, तीखे नाक-नक्श और कजी आँखों वाली सुलोचना अनुपम लग रही थी। उसने कोटा डोरिये की साड़ी पहन रखी थी। उसने साड़ी पर गुलाबी रंग का ओढ़ना ओढ रखा था। नाक का

तिणखा हीरे का था अतः तारे की तरह झिलमिल-झिलमिल कर रहा था। हाथों में भी हीरे की दो अँगूठियाँ थी।

वह बग्गी से उतरकर भीतर गयी। उसकी नौकरानी रामली उसके पीछे-पीछे थी—हाथ में एक थैला लिये हुए।

बड़े घराने की बहू-बेटियों का तब बड़प्पन ही यही था कि उसके साथ एक नौकरानी रहे। ये नौकरानियाँ या तो गरीब गाँव वाली होती थी जो दुर्भिक्ष मे रोटी की तलाश में शहर की ओर चली आती थी और मेहनत-मजूरी करके अपना पेट पालती थी, या फिर कोई विधवा-बालविधवा होती थी जो सहारा ढूंढ़ती थी।

रामली ब्राह्मणी थी। बाल-विधवा। शादी के बाद गौना ही नही हुआ था कि बेचारी के पति को खून की कै हुई और मर गया। हाथ की चूड़ियाँ टूट गयी। ललाट की बिंदिया मिट गयी। नाक का काँटा खुल गया।

रंग-बिरंगे कपड़ों की जगह श्वेत-श्याम कपड़ों ने स्थान ले लिया। एकदम जीवन धूल, धूसरित और रेगिस्तान में बनी सन्नाटों भरी पगडडी-सा हो गया।

ब्राह्मण की बेटी थी रामली। विधवा हो गयी इसलिए उसे सारा जीवन मान-मर्यादा, धर्म और वैधव्य की आग मे जलते हुए बिताना था। बाप यजमानी करता था। आस पास गाँवों मे पाठ-पूजा और व्रत-कथाएँ सुनाकर अपने तथा अपने दस बच्चो का पेट भरता था।

उसका बाप श्यामलाल जरा लालची किस्म का आदमी था। उसके तीन लड़के सात लड़कियाँ थी। इससे वह परेशान नही बल्कि प्रसन्न था।

उसने रामली को पाँच हजार नकद रुपयों में बेचा था। वह बिना रुपये लिये लड़कियों का ब्याह नही करता था। उसका कहना था कि उसको भी पत्नी तभी मिली है जब उसने अपने मामा की बेटी और एक हजार रुपये नकद अपने चचा-ससुर को दिये। मामा की बेटी के साथ उसके ब्याह का सट्टा था।

रामली कभी-कभी सेठानी को बताया करती थी, "सेठानीजी ! आपको क्या बताऊं? मेरे बाप ने मेरे नकद पाँच हजार रुपये लिये हैं। मैंने अपनी आँखों से देखे—मेरे सासरवाले लाल थैलियो में चाँदी के नकद

रुपये लाये थे। आँगन में एक ढेरी लग गयी थी।

तब मेरे भाई ने दबी जबान डरते-डरते कहा था, "काका (मेरे पिता को सब काका ही कहते थे) मैंने सुना है कि लड़के को टी० बी० की बीमारी है। उसके थूक में खून निकलता है।"

"नहीं-नहीं, यह झूठ है। जिन लोगों को हम बेटी नहीं देते है, वे जलकर ऐसी बातें फैलाते है। लड़का ठीक है।"

पर लड़के को टी० बी० थी। शादी होने के दो साल में ही वह खून थूकता-थूकता चल बसा।''' मेरा सारा संसार समाप्त हो गया। जीवन बंजर धरती की तरह वीरान और बेकार हो गया। फिर विधवा लड़की बोझ ही होती है। अब मुझे सदा जली-कटी सुननी पड़ती थी। आखिर मुझे यहाँ भेज दिया गया कि मेहनत-मजूरी करके मैं अपना वैधव्य गुजार भी लूँ और सुधार भी लूँ '। सेठानीजी जब बाप कसाई की तरह निर्दयी हो जाता है तब बेटी का जन्म कैसे खराब नहीं होगा। मेरा बाप तो सोचता है कि एक-एक बेटी को बेचता रहूँगा तो मेरा जीवन बीत जायेगा।"

तब सेठानी उसके प्रति करुणा से देखती। उसकी आँखों में दया उभरती। वह अपनेपन से बोलती, "रामली! बामण-बाणियों के समाज में स्त्री का जन्म व्यर्थ है। बचपन में माँ-बाप की हुड़क'''जवानी में पति की और बुढ़ापे में बेटे-बेटियों की। बेचारी का अपना स्वतंत्र जीवन है ही नहीं।"

रामली अपराधी की तरह सिर झुकाकर कहती, "सेठानीजी! आपके सामने झूठ नहीं बोलूँगी।'''जब सावन के ठंडे हिलोरें चलते हैं तब रोम-रोम में सूइयाँ चुभती हैं! पाप की बात है, पर मन की पीड़ सही नहीं जाती। मन में न जाने कितने गंदे-गंदे विचार आते हैं कि अपने आप से घिन्न-सी होने लगती है कि मैं विधवा होकर पाप की बात क्यों सोचती हूँ।"

चाँदा सेठानी उपदेशक की तरह बोलती, "उस समय हरे कृष्ण हरे कृष्ण जपा करें। मन का मैल साफ हो जायेगा। आत्मा पवित्र हो

जायेगी। जब-जब मन मे पाप के विचार उठते हों—भगवान का नाम लिया कर।"

"अब ऐसा ही करूँगी।" रामली ने गर्दन झुकाकर कहा। उसका चेहरा उसके आंतरिक संघर्ष के कारण उदास हो गया था।

सेठानी ने बड़प्पन से कहा, "रामली ! पाप के रास्ते पर चलकर प्राणी नरक का भागी होता है। जब परमात्मा ने तुम्हारा सुख छीन लिया है, फिर तुम्हें संयम और नियम से जीना चाहिए।

उस दिन रामली अपनी करुण कथा सुलोचना को सुनाती-सुनाती भड़क उठी। उसकी आकृति पर सहसा खुरदरापन पैदा हो गया। भीतर जैसे आक्रोश का तूफान उमड़ा हो, ऐसे वह दाँत भीच कर बोली, "मेरा परमात्मा ने नही, मेरे पिता ने सुख छीना है, उसने मुझे जान बूझकर कुएँ में ढकेला है, जान बूझकर टी० बी० के बीमार से शादी की थी।··· बहूजी ! यह अन्याय नही ? क्या मेरे बाप को नरक का भय नही। उस सौदेबाज को परमात्मा दंड क्यूँ नही देता ?"

सुलोचना ने रामली को गौर से देखा। उसकी आँखों मे आक्रोश की चिंगारियाँ दहक रही थी।

"बड़ा क्रोध आ रहा है।" सुलोचना ने उसकी आँखों में झाँक कर देखा।

"क्रोध तो आयेगा ही बहूजी, जिसे जान बूझकर बलि का बकरा बनाया जाय, क्या यह फूं-फां भी न करें ?"

"सच कहती हो रामली, कम से कम हमारी पीढ़ी मे बोलने की हिम्मत तो आई है ! अब तू ही सुन।" वह एकदम सावधान होकर बोली, "सासजी से कहना मत, तुझे मेरी सौगन्ध है।"

उसने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया।

"अब सासजी मुझे भी उसी नरक की आग में झोंकना चाहती हैं, जिस आग में वह खुद जली हैं।···वह मुझे अपने पति के संग कलकत्ता नही भेजेंगी ? क्यो नहीं भेजेंगी। जब कलकत्ता में पाँच-पाँच कमरे ले रखे हैं।··· केवल इसलिए नही भेजेंगी क्योंकि वह खुद कलकत्ते नही गयी थी।··· पर मैं उनकी बात नही मानूंगी। मैं अपने पति के संग ही रहूँगी चाहे कितना कष्ट उठाना पड़े, कितने तानें सुनने पड़े ?"

"आपसे सेठानीजी बहुत नाराज हैं।"

"वे समय के तकाजे को नही समझती। ···अब पैसे के लिए तन गलाना ठीक नही समझा जाता ? रामली ! झूठ नहीं बोलूंगी सेज के सुख से ज्यादा कोई सुख नही है।"

"इसकी बात न करो बहूजो···मुझ अभागी के भाग मे यह सुख नही लिखा है।···सारी उम्र तिलतिल जलना है, तरस-तरस कर नयन बरसाने हैं।

कासी ने नीचे से आवाज लगायी, "रामली बैठी-बैठी बातें ही मारती रहेगी या कपड़े धोएगी ? तेरी बातें कभी खत्म ही नही होती है।···बड़ी बात्तेरी हो गयी है।"

रामली ने ऊपर से कहा, "आ रही हूँ कासी मासी।"

□
□

उस दिन सुबह से ही हवेली मे चहल-पहल थी। चाँदा सेठानी का बेटा दामोदर आने वाला था। सुलोचना ने आटे, हल्दी और तेल की पीठी करके रोम-रोम का मैल साफ किया था। फिर गोदरेज नम्बर वन साबुन से नहायी थी। बालों में चमेली का तेल डालकर इत्र वाले जोशी रामप्रसादजी का इत्र लगाया। बालों को वीणा स्टाइल में सँवारा। सिर पर बोरियाँ, कानों में सुरलियाँ, बालियाँ, गले में सांकल पहनी। रेशमी साड़ी और ब्लाउज। पाँवों में पायल पर बिना घुंघरुओं की !

सुलोचना जैसे-जैसे सज रही थी, रामली वैसे-वैसे उदास हो रही थी। वह पीड़ा से भर-भर आती थी। उसके जोबन का कंवल वैधव्य की आग में झुलस कर टीस उठा रहा था।

सुलोचना ने जैसे उसके मन की जान ली हो, बोली, "रामली ?··· मुँह क्यों उतार रही है। आज मेरे पति आयेंगे।"

रामली ने कोई जवाब नही दिया। उसने लम्बा साँस लिया।

"सुन, मेरी बात मान, किसी से फिर फेरे खा ले। तू तो अनछुई है। तुझे तो प्रभु भी क्षमा कर देगा। दोषहीन को कौन दोष देगा ?"

रामली निस्पंद हो गयी। उसकी आँखें विस्फारित हो गयीं। चेहरा

हैरानी मे डूब गया।

"क्यों दीदे फाड़-फाड़ कर देख रही है ?"

"बहूजी ! इतनी नीच बात कहते हुए आप की जीभ को रुकावट नही आयी। मैं पापिन नही बन सकती। मैंने पूर्व जन्म में पाप किये थे, इसलिए मैं विधवा हुई। यदि मैंने इस जन्म मे और पाप किये तो अगले जन्म में मेरे रोम-रोम में कोढ़ फूटेगी। मुझे नरक मे भी जगह नही मिलेगी।"

सुलोचना ने उदास हँसी-हँस कर कहा, "तू बिल्कुल अनपढ, गवार है। सत्य-असत्य का अपने अनुभवो पर नही, सुनी-सुनायी पर लेखा-जोखा कर रही हो ? सत्य का सम्बन्ध अपने अनुभवो पर होता है। अपने ज्ञान से होता है। मैंने पढ़ा-लिखा है। पूरी पाँच कक्षा पास की है।...रामायण, महाभारत, सुखसागर, सिंहासन बत्तीसी, तोतामैना, पंचतंत्र आदि पुस्तकों को पढ़ा और समझा है। मैंने ही तुम्हें एक दिन कहा था कि सयम नियम से चलो, जब कोई अधर्म की बात मन में आये, भगवान का नाम लिया करो...पर तुम्हारी सम्पूर्ण स्थिति पर सोचने के बाद मैं समझती हूँ कि केवल विवाह-मंडप में बैठकर चार फेरे खाने मात्र से कुंवारापन नही टूटता ? पति का सुख क्या होता है, यह अहसास की चीज है। यदि तू फिर शादी करती है तो कोई पाप नही।"

रामली ने तड़प कर अपने कान बंद कर लिये। बोली, "नही बहूजी, मैं यह पाप नही कर सकती। मैं आपके चरणों मे बैठ कर मेहनत-मजूरी करके अपना पेट पाल लूंगी। छिः छिः आपको क्या हो गया है बहूजी, क्यों मुझे खराब रस्ते पर चलने के लिए कहती है।"

और रामली चली गयी।

हवेली से थोड़ी दूर एक स्वामी तीरथराम का मकान था। उसके घर के आगे एक 'सांसण' घुंघरू पहनी हुई कटोरी बजा-बजा कर गा रही थी—

म्हारी-रे आँखड़ली फरुकै
ढोलो कद आवसी रे...

सुलोचना ने खिड़की से झाँका। सांसण अब भी अपने आप मे डूबी गा रही थी।

सुलोचना ने उसे एक मदभरी मुस्कान से देखा और अपने

कहा, "आज आवसी ढोलो'''आज आवसी। आज आयेगा मेरा प्रीतम आज आयेगा।

और वह पलग पर पड कर सोचने लगी—आज आयेगा मेरा प्रीतम, आज आयेगा।

कासी ने आकर उसकी सोच को भग किया। बोली, "सेठानीजी कह रही है कि आज ठाकुर जी की सेवा नही होगी क्या ?"

वह हड़बड़ा कर उठी। उसे अपनी भूल का अहसास हुआ। वह बोली, "अभी सेवा करती हूँ।"

कासी जैसे ही सेठानी के पास पहुँची। वैसे ही वह गर्म तवे पर जैसे पानी छिनकता है, वैसे छिनक कर बोली, "महारानी जी महल से नीचे पधारी कि नही ?"

"आ गयी।"

"कैसी निर्लज्ज है! सुबह से सज-धज रही है। न सेवा और न पूजा ? कासी! यदि बिज्जी जीवित होती तो मैं तुम्हे सप्रमाण पूछवाती कि हमारे पति परदेश से कितने सालो के बाद आते थे और हम कितने धर्म, सयम और नियम से रहती थी। सास की आँख का इशारा समझती थी। चाहे पति पूरे सात साल के बाद आये पर रात के पहले तो मुझे उनके दर्शन दुर्लभ थे। इस बहू की तरह दिन में मालिये में नही जाती ? सारी नीति-रीति ही मर गयी है।"

कासी ने गंभीर होकर कहा, "सेठानीजी, इसे ही तो कलयुग कहते हैं। अब तो छोटे बाबू आने ही वाले हैं। उनके लिए नाश्ता क्या बनाया जाय ?"

"अरे! उसे आने तो दे, उसे ही पूछ कर महाराज (रसोइया) को कह देना। नाश्ता बनने मे कौन से बरस लगते हैं।"

"ठीक है।' कह कर कासी 'पिछोकड़े' (पिछले हिस्से) मे आकर गेहूँ की बोरी साफ करने लगी। काम करते समय उसे भजन-गाने की आदत थी। पर आज वह गभीर लग रही थी। उसके मन में द्वन्द्व चल रहा था कि आज माँ बेटे मे लड़ाई होगी। एक ऐसा श्रीगणेश होगा जो आज तक इस हवेली में नहीं हुआ ? वह सेठानी के कठोरपन को जानती थी। उसे

कुछ भी बदलाव पसंद नही था।···और बहू ?···बहू समय की हवा के साथ उड़ना चाहती है। परदेश में अपने पति के साथ अकेली रहना चाहती है। सुनते हं परदेशों में पति-पत्नी हाथ मे हाथ डाले घूमते है, ओढना नही ओढ़ते, बायस्कोप देखते है, यह तो सब विलायती स्त्रियों के काम हैं। हवेलियों की स्त्रियाँ ये सब काम नही कर सकती। उन्हें सीमा में रहना पडता है।

कासी हवेली मे पिछले बीस बरस से थी। अभी उसकी उम्र बायालीस साल की है। बीस साल पहले गाँव मे भयकर अकाल पड़ा था तब उसका पति अपनी गायों-भैंसों को लेकर पंजाब की ओर चला गया सो वापस नही लौटा। लोगों का कहना था कि डाकुओं ने उसके पति को मार डाला है और वे उसके सारे पशु छीन कर भाग गये।

चूंकि कासी के पति की मृत्यु का कोई प्रमाण नही मिला था, इसलिए कासी सदा सुहागिन का जीवन जी रही है। वह काला नही ओढ़ती तथा हाथ की चूड़ियाँ व नाक मे काँटा भी पहनती है! चूंकि पेट भरने का कोई साधन नहीं था इसलिए हवेली में आ गयी। हवेली मे आने के बाद वह सदा-सदा के लिए हवेली की होकर रह गयी।

हवेली की सुख शांति की रक्षा के लिए वह प्रयत्नशील रहती है। हवेली मान-मर्यादा की श्री कभी न जाए, इसके लिए वह त्याग भी कर सकती है।

आज इस घर में अशांति का बीज डलनेवाला था। माँ बेटे के बीच दरार पड़नेवाली थी। एक गृह-कलह का जन्म होने वाला था अतः उसके होंठो से भजन का राग नही फूटा। वह आंतरिक संघर्ष में झूलती रही।

बार-बार वह सोच रही थी कि यह अमंगल टल जाए। बहू को सही बुद्धि आ जाए। वह क्यों कलकत्ता जाने का जिद्द कर रही है।

वह अजीब सन्नाटों से घिर गयी।

□
□

एक बार हवेली मे हलचल का गुब्बारा उठा। एक वाक्य हवेली में हर जगह दौड़ा—छोटे बाबू आ गये हैं·· छोटे बाबू आ गये हैं।"

इस वाक्य ने अपना वांछित प्रभाव डाला। सबमें एक स्फूर्ति व गतिशीलता आयी। सिवाय चाँदा सेठानी के सभी दरवाजे की ओर लपके··· बहू भी नीचे आकर एक ओट में खड़ी हो गयी। उसे आशंका थी कि सास जी आ गयी तो एक शीत युद्ध की स्थिति पैदा हो सकती है।

दामोदर ने हवेली के आँगन मे आते ही अपनी माँ को पुकारा, "बाईजी ओ बाईजी आप कहाँ हैं ?"

खम्भे की आड मे उसे साडी का हिस्सा दिखायी दिया। वह समझ गया कि सुलोचना है पर माँ के पूर्व उसे पत्नी से मिलना ठीक नही लगा। फिर आँगन मे···?···नही···नही । उसने फिर माँ को पुकारा।

कासी ने आकर कहा, "छोटे बाबू, सेठानी जी अपने मालिये मे है।"

दामोदर कासी का मान एक बुजुर्ग की तरह करता था। उसने उसके चरण छुए, "पालागी कासी बाई।"

"जुग-जुग जिओ छोटे बाबू···दूधो नहाओ, पूतो फलो···कैसी तबीयत है ?"

"अरे कासी बाई एकदम ठीक हूँ।" दामोदर ने बडे उत्साह से अपने दोनों हाथों को उठाकर उसे लटकाते हुए कहा, "सच कहता हूँ कासी बाई, आजकल मेरे भीतर एक प्रेत घुस गया है···पन्द्रह-पन्द्रह फुलके खा लेता हूँ···बडा पेटू हो गया हूँ।"

यह सब वह अपनी पत्नी सुलोचना को सुना रहा था। एकाएक उसको ब्रेक लगा और आकृति एकदम म्लान हो गयी। मन मे कहा, 'बाप रे ! इससे भी कितनी बडी गलती हो गयी ? माँ बीमार है और वह परिहास कर रहा है। छि···।'

उसने गंभीर होकर कहा, "कासी बाई, मेरी बाई (माँ) की तबीयत कैसी है।"

"आप खुद ऊपर जाकर देख आइए।"

वह लपकता हुआ ऊपर गया।

सेठानी अपने मालिये मे बैठी-बैठी 'श्रीकृष्णं शरणं मम' का गुटका लिए हुए पाठ कर रही थी।

उसने माँ के चरण स्पर्श करके पूछा, "कैसी है तबीयत ? मेरे तो होश

उड गये थे। बोलो, क्या हुआ ?"

सेठानी ने प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। फिर शांत-संयत स्वर में कहा, "पहले नहा धोकर मदन मोहन जी के मंदिर दर्शन करके आ। ···फिर मुझे क्या बीमारी है, इसके बारे में तुझे बताऊँगी।"

दामोदर शंकाओं से भर गया। जरूर कोई गडबड है! तार किसी और उद्देश्य से दिया गया है।

वह उदास हो गया।

माँ कृष्ण स्मरण में पुन: लीन हो गयी।

वह सीधा अपने मालिये में आया।

मालिये में पहले से ही सुलोचना थी। दामोदर को देखते ही उसने लपक कर चरण धूलि ली। गहरे अपनेपन से देखा।

"कैसी हो ?" उसने बुझे हुए स्वर में पूछा।

"ठीक हूँ। आपका शरीर कैसा है ?"

"एकदम ठीक।" जैसे अपनी गलती को याद करके वह बोला, "घर में घुसते ही तुमसे मिलने की तीव्र उत्कंठा ने मुझे यह भुला ही दिया कि माँ की बीमारी का तार आया है।···अब बडी ही शर्म लग रही है। नौकर चाकर क्या समझेंगे ?

सुलोचना ने कहा, "तार तो झूठा था। बाईजी एकदम ठीक हैं।

"फिर मुझे तार···?"

"बाद में बताऊँगी।" सुलोचना ने गंभीर होकर कहा, "आप तो समझदार हैं। हर घर में रांडी-राड़ होती रहती है। आप से बाद में बात करूँगी। पहले आप नहा-धोकर पाठ-पूजा कर लीजिए।"

दामोदर ने ललाट में बल डाल कर कहा, "मुझे पहले [illegible] था कि यह तार झूठा है। पर यदि नही आता तो, माँ [illegible] व्यर्थ ही दो सौ-चार-सौ का कुडा हो जायेगा।"

"अभी आप नहा धो लीजिए। इस रांडी-राड में [illegible] विष हो जायेगा।"

उनका मन उचाट-सा हो गया। भीतर कड़वी [illegible] अजीब हैं बाईजी भी।

तभी रामली उसका सूटकेस व बिस्तरबंद लेकर आ गयी।

उसने रामली से कहा, "ज़रा बिस्तरबंद खोल कर मेरा गमछा, धोती और बनियान निकाल दे। उन्हें स्नानघर मे रख आ···मैं स्नान करूँगा।"

"जो हुक्म छोटे बाबू।"

रामली अपने काम मे व्यस्त हो गयी।

मालिये के आगे छोटा-सा बरामदा था, रामली वहाँ बिस्तरबंद खोल कर कपड़े निकालने लगी।

बिस्तरबंद को खाली करके बरामदे की दीवार पर धूप लगने के लिए रख दिया। फिर वह छोटे बाबू के कपड़े लेकर नीचे चली आयी।

दामोदर ने लम्बी चुप्पी धारण कर रखी थी। उसकी आकृति का रूखापन अन्तस की गंभीरता बता रहा था।

सहसा उसकी आकृति पर टिटहरी-सी कोमलता आयी। वह बोला, "और क्या हाल हैं ?"

यह वाक्य उछल कर सीधा सुलोचना के चेहरे पर चिपका। उसके भीतर एक सिहरन-सी दौड़ा दी। सुलोचना को कंपकंपी-सी लगी।

विचित्र स्थिति !

दामोदर ने उठते हुए कहा, "मैं पहले नहा धो लूँ। फिर···।"

और मुसकराता हुआ वह बाहर चला गया।

□
□

मंदिर जाकर दामोदर जैसे ही हवेली लौटा, वैसे ही वह माँ के पास गया।

माँ अब भी अपने मालिये मे थी। वह काफी गंभीर लग रही थी। उसके चेहरे पर पल-पल परिवर्तन आ रहे थे जिसमे लग रहा था कि उसके भीतर दुर्धर्ष संघर्ष चल रहा है।

"बाईजी ! तार क्यों दिया था ?"

"तुम्हारी बहू के कारण···।" सेठानी ने तपाक से रोष भरे स्वर मे कहा, "मुझे नित-नित की झक्-झक् पसंद नहीं है।"

"आखिर बात क्या हुई ?"

उसने अपने शब्दों पर जोर देकर कहा, "मुझे तुम्हारी बहू का स्वभाव पसंद नही। वह जब तब हवेली से बाहर जाती रहती है और मुझसे इस बात के लिए माथा-पच्ची करती रहती है कि मैं रहूँगी तो अपने धणी (पति) के साथ ही।···फिर बेमतलब का सजना-सँवरना मुझे अच्छा नही लगता। इस हवेली की यह परम्परा रही है कि जो सास चाहेगी, वही होगा। यहाँ सास का हुक्म ईश्वर के बराबर समझा गया है।"

दामोदर को माँ की बात जरा अनुचित लगी। इतनी छोटी-सी बात के लिए तार देने की क्या जरूरत थी ?

वह जरा रूखेपन से बोला, "बाईजी ! आजकल कौन से घर मे यह रांडी-राड़ नही होती है, पर इसका मतलब यह नही है कि आप मुझे तार देकर बुलवा लो। अभी गये हुए मुझे चार महीने ही नही हुए हैं। काम-धंधे में कितना नुकसान होता है, आप सोच भी नही सकती ?"

सेठानी ने अपने बेटे को अभिप्राय दृष्टि से देखा। उसकी आकृति पर बावलिये काँटे-सा तीखापन उभर आया था। वह बोली, "जिस घर में कलह होती है, अशांति रहती है, उस घर में लिछमी नही आ सकती। वहाँ सुख-शांति नही रह सकती।···मैं घर की मान-मर्यादा और परंपराओं के बीच रहना चाहती हूँ। बहू सास को पूछ कर बाहर न जाए, यह किस घर का बड़प्पन है ? मैं भी तो किसी की बहू रही हूँ। अपनी सास की आज्ञा के बिना हवेली क्या, मालिये से बाहर भी कदम नही रखती। आज तक इस घर की बहू ने अपनी सास के सामने कभी जबान खोली है ?·· घर का ढाँचा ही बिगड रहा है।"

दामोदर ने अपनी मां की ओर प्रश्न-भरी नजर से देखा। फिर वह नजर फीके उलाहने से भर आयी। बोला, "बाई जी ! आपका सारा संसार यह हवेली है। हवेली की चार दीवारी के बाहर के संसार से आप बिलकुल अनजान हैं। यह अनजानपन आपको बदलावों की सच्चाइयों से परिचित नही करा सकता। मारवाड़ी समाज के लोग-लुगाइयाँ अब पहले वाले नही रहे हैं। आप अब कलकत्ता जाकर देखिए···वे अब गद्दियों

मे अपनी सारी उम्र नहीं बीताते ? आधे लोग अपनी पत्नियों के साथ परदेशों मे रहने लगे ।"

सेठानी भड़क उठी, "तुम कहना क्या चाहते हो ? मुझे यही समझाने जा रहे हो कि तुम्हारी बहू जो भी कर रही है, वह ठीक है ।"

सहसा उसकी हड्डियों में ठंड-सी घुस गयी । वह घबरा कर बोला, "नहीं-नहीं, मैं यह कहना नहीं चाहता । मैं तो सिर्फ सच्चाई के बारे में आपको बता रहा हूँ । समाज में हो रहे परिवर्तनों की जानकारी दे रहा हूँ ।"

"मुझे जानकारी देने की कोई जरूरत नहीं है ।" वह विषाक्त स्वर मे बोली, "मैंने तुम्हे पैदा किया है न कि तुमने मुझे ? तुमने जितना आटा खाया है, मैंने उतना नमक खाया है ।"

उसने अपराधी की तरह गर्दन झुका ली । बोला, "यह ठीक है बाई जी ।"

चादा सेठानी ने गर्दन ताने हुए कहा, बेटा ! कोई आदमी गदगी मे मुँह डालेगा, इसका मतलब यह नहीं है कि हम भी वैसा ही काम करेंगे ? हम अपना विवेक क्यों खोयेंगे ? समय बदलने के साथ हम अपने कुटुम्ब के गौरव, धर्म और मान-मर्यादा को क्यो बदलें ? उसकी आन-बान को क्यो छोड़ें ? यह तो हमारी दुर्बलता रही । दृढ़ व्यक्ति तो उसी को ही कहेंगे जो अपनी मर्यादा, संस्कृति और सभ्यता को न त्यागे ? "और वह कैसा मूछोंवाला खसम होता है जो अपनी पत्नी को अपने कहे में न रख सके ?"

"मैं उसे आज समझा दूँगा । आप चिंता न करें ।" दामोदर ने उठते हुए कहा, "आगे मे वह कोई भी गलती नहीं करेगी । मैं बाजार जाकर मामी जी से मिलकर आऊँगा । मामा ने दो हजार रुपये और कुछ कपड़े भेजे हैं ।"

"साँझ को जल्दी आ जाना ।"

"ठीक है ।"

दामोदर उठ कर अपने मालिये मे आया । मालिये के आगे की सांस से हवा ठहर-ठहर कर आ रही थी ।

दामोदर ने एक लम्बा साँस लिया जैसे वह अपने भीतर की घुटन बाहर निकाल रहा हो। फिर सुलोचना के सामने बैठता हुआ शिकायत के लहजे में बोला, "यह क्या तमाशा मचा रखा है? तुम समझदारी से काम क्यों नहीं लेती?"

"मैं समझदारी से काम नहीं लेती, यह आपको किसने कहा?" उसने हैरानी से स्थिर दृष्टि करके दामोदर को घूरा। बोली, "बस, आते ही बाई जी ने आपके कान भर दिये हैं। पहले दोनों पक्षों की सारी बातें सुनो, फिर कोई निर्णय करो। एकतरफा बात सुनकर आप मुझ पर अन्याय ही करेंगे। न्याय करने का सही तरीका यही है कि दोनों पक्षों की बात सुनो, साक्षियों से पूछो। ''यह मैं जानती हूँ कि मेरा पक्ष कमजोर ही रहेगा। पीढ़ियों से चलता आया है कि कसूरवार बहू ही होती है! सास न तो कभी अन्यायी होती है और न खराब! वह तो दूध की धुली ही होती है।"

दामोदर ने देखा कि सुलोचना की आँखें गीली हो गयी हैं।

वह कुछ कहना ही चाहता था कि रामली आ गयी।

"छोटे बाबू! फरसिया पूछ रहा है कि बग्गी जोड़ूँ।"

"अभी नहीं। अभी मैं कुछ देर आराम करूँगा। रेल में नींद नहीं आयी थी इसलिए शरीर भारी है। सिर में दर्द है।"

रामली को सहसा रोमांच का अनुभव हुआ। सिर में दर्द···! कौन-सा दर्द है मैं जानती हूँ। वह मन-ही-मन बोली और जरा मचलती हुई वह चल पड़ी।

☐

☐

लगभग एक घंटे के बाद दामोदर हवेली से चला गया। वह बग्गी पर था। कोचवान गाड़ी चला रहा था और एक चाकर पीछे खड़ा था। पुराने युग की रईसी के ये सब ठाट-बाट थे। घोड़ा काले रंग का था। लम्बा, तगड़ा। सिंध से लाया गया था। कहते थे कि वह अरबी नस्ल का है। बग्गी-रघुनाथसर, खांडिया कुएँ में होती हुई दम्माणियों के चौक की ओर बढ़ गयी। तब सड़कें नहीं थीं रास्ते में रेत फैली हुई थी।

पर काला घोड़ा तेजी से जा रहा था।

एकाएक बग्गी रुकी।

दामोदर ने झाँक कर देखा।

"घणी घणी खम्मा···सेठ साब की जय हो, दूधो नहाओ, पूतो-फलो, भगवान आपके भंडार भरे रखे।"

दामोदर उसे पहचान गया। छगन ओझा थे। पुष्करण ब्राह्मण ! एक गमछा पहने और एक गमछा कन्धे पर रखे। सिर पर कैंची की हजामत कराए···बड़ी-बड़ी मूँछें। नगे बदन पर फूलती आठ सूती जनेऊ। नंगे पाँव ! दाएँ कान मे सोने का भंवरिया।

"कहो महाराज, क्या हाल है ?"

"बाबू साब, आपकी किरपा चाहिए। ' आपका दिया खाते हैं और और आपकी जै-जै कार करते हैं।"

"महाराज, कोई हुक्म करो।"

"क्या हुक्म करूं बाबू साब ! गर्मी भयंकर पड़ रही है। धूप पाँव जला रही है। आप किरपा कर दो तो मैं जूती पहन लूं।"

दामोदर ने थोड़ी देर सोचा। फिर जेब में से दो रुपये निकाल कर दे दिये।

छगन ने रुपये लेकर दोनों हाथ ऊँचे किये। फिर बड़ी दीनता से कहा, "मोकला वधो···थारै घर मे धन की नद्यां बवै।"

बग्गी चल पड़ी।

छगन प्यासी निगाह से उन दो चाँदी के रुपयों को देखता रहा। अपने सद्‌वचन मे सेठ के घर में नदी बहाने वाला यह पुष्करणा अपने घर में धन की बूँदें भी नही बरसाएगा ? मांग कर खा लेगा पर जीवन पद्धति को बदल कर आर्थिक समृद्धि की ओर नही बढेगा !

और दामोदर सोच रहा था कि दो रुपयों में हजारों आशीषे ! बडे ही भोले हैं ये लोग।

☐
☐

दासी ने आकर सेठानी को बताया, "छोटे बाबू बाहर चले गये हैं।"

"जाने दे, मैं जानती हूँ कि वह अपनी बहू से मिला हुआ है।"

कासी ने सेठानी को चापलूसी भरे स्वर में कहा, "हाँ···हाँ · घाघरे का डेरा हुआ जा रहा है। अभी घंटे भर मालिये में था और किवाड़ बंद थे।"

"निर्लज्ज हो रहे है। बहू तो लाज-शर्म घोलकर शर्बत की तरह पीती जा रही है। दिन में पति को लेकर क्या पहले कोई बहू बैठती थी ? यदि कभी-कभार कोई बहू अपने पति से बोलती हुई पकड़ी जाती तो बेचारी शर्म के मारे जमीन में गड जाती थी। फिर तो दो-पाँच दिन सासू के सामने नही आती थी। गज-भर का घूंघट निकालती थी। रात को सब के सो जाने के बाद चोरी-चोरी डागले चढती या मालिये में घुसती थी ? · कासी ! मुझसे यह सब नही सहा जाता और न मैं अपने को बदल सकती हूँ। बेटे-बहू से मैं हार मानूँ, ऐसा तो मेरी माँ ने भी मुझे पैदा ही नहीं किया है ? मैं हार मानने वाली नही हूँ।"

कासी ने कोई उत्तर नही दिया। वह सेठानी के गहर-गंभीर तथा ओजस्वी चेहरे को देख रही थी। उस पर पीड़ा और दंभ का मिला-जुला भाव था।

कासी चौक कर बोली, "हाय, मैं तो दूध को बाहर ही रख आयी। कहीं काली बिल्ली ने पी लिया होगा तो सारे दिन तकलीफ भोगनी पड़ेगी। 'छोटे बाबू कलकत्ता रहते हैं। कही चाय माँग ली तो ?"

और कासी लपक कर चली गयी।

सेठानी सोचती रही, सोचती रही। फिर अतीत की आँधियाँ उसके दिमाग में चलने लगी। इतनी अवसाद और पीड़ा से आहत हो गयी कि उसे लगा कि वह टूट जायेगी ! उसे अपनी कोख के आगे क्या पराजय स्वीकार करनी पड़ेगी ? उसका मान, तेज और अकड सब मिट्टी में मिल जायेंगे।

जब मस्तिष्क में तनाव अधिक हो गया तो वह तम्बाकू की चाँदी की डिबिया निकालकर सूंघने लगी। दो-तीन चुटकी भर तम्बाकू नाक के द्वारा मस्तिष्क को छूआ तो उसका तनाव कम हुआ !

उसने अपने मालिये के दरवाजे उढका लिये। खिड़की बंद कर ली।

पंखा धीरे-धीरे चालू कर दिया।

पर सेठानी को नींद कहाँ ? एक पर एक विचार आते रहे।

जिस अतीत से वह कटना चाहती थी, वह उसको याद आने लगा।

आत्मालोक के विशाल पट पर वह साकार होने लगा—

उसका बाप जैमलसर का रहने वाला था। फोग और वेर की झाड़ियों के बीच बसा यह गाँव धोरों (रेत के टीबो) से घिरा हुआ था। ब्राह्मण, बनिये व राजपूत और अन्य जातियाँ वहाँ रहती थीं।

चाँदा का जन्म ऐसे घर में हुआ था जहाँ खेती-बाड़ी थी और उस गाँव की खेती-बाड़ी राम भरोसे थी। यदि आषाढ़-सावन सूखा चला जाए तो मरुधरा प्यास के मारे तरसने लगती है। पेड़ सूखने लगते हैं और धरा तरेड़ों के कारण एकदम विद्रूप और विकृत लगने लगती है। सारे मरुधर-वासी याचना-भरी आँखों से आकाश की ओर देखने लगते हैं। हर घड़ी हर पल प्रार्थना करते है—

हे इन्द्र भगवान,

तू बरस और हमारी उदरपूर्ति कर !

फिर कहीं बूंदा-बाँदी हो गयी तो खेतों में अनाज की जगह घास हो जाता था। उस घास से पशु-पालन होता था। यदि घास ज्यादा होता था तो उसे लोग ऊँटों पर बड़ी-बड़ी दो काले ऊन की बनी 'छांट्यां' में लादकर बीकानेर की ओर ले चल पड़ते थे।

महीने में पाँच-सात गेड़े हो जाते ये जिससे जरूरतों की पूर्ति होती थी।

चाँदा का बाप जेठमल भी खेती और पशु-पालन का काम करता था। उसके पास पचास गायें थी। उन गायों की बदौलत उनके परिवार का पोषण होता था।

चाँदा जन्म से ही सुन्दर और शुभ थी। उसके पिता का कहना था कि चाँदा के जन्म के बाद उसका धन बढ़ा है। पहले उसके पास पाँच गायें थी। धीरे-धीरे गायें बढ़ते-बढ़ते दुगुनी हो गयीं।

चाँदा चाँद-सी सुन्दर थी। हालांकि जेठमल गेंहुए रंग का था पर चाँदा की माँ 'नाथी' पूंगलगढ़ की पद्मिनी जैसे लावण्यमयी एवं आकर्षक

"जाने दे, मैं जानती हूँ कि वह अपनी बहू मे मिला हुआ है।"

कासी न सेठानी को चापलूसी भरे स्वर मे कहा, "हाँ···हाँ · घाघरे का डेरा हुआ जा रहा है। अभी घटे भर मालिये मे था और किवाड़ बंद थे।"

"निर्लज्ज हो रहे है। बहू तो लाज-शर्म घोलकर शर्बत की तरह पीती जा रही है। दिन मे पति को लेकर क्या पहले कोई बहू बैठती थी ? यदि कभी-कभार कोई बहू अपने पति से बोलती हुई पकड़ी जाती तो बेचारी शर्म के मारे जमीन मे गड़ जाती थी। फिर तो दो-पाँच दिन सासू के सामने नही आती थी। गज-भर का घूँघट निकालती थी। रात को सब के सो जाने के बाद चोरी-चोरी डागले चढ़ती या मालिये में घुसती थी ? कासी ! मुझसे यह सब नही सहा जाता और न मैं अपने को बदल सकती हूँ। बेटे-बहू से मैं हार मानूं, ऐसा तो मेरी माँ ने भी मुझे पैदा ही नही किया है ? मैं हार मानने वाली नही हूँ।"

कासी ने कोई उत्तर नही दिया। वह सेठानी के गहर-गंभीर तथा ओजस्वी चेहरे को देख रही थी। उस पर पीड़ा और दंभ का मिला-जुला भाव था।

कासी चौंक कर बोली, "हाय, मैं तो दूध को बाहर ही रख आयी। कही काली बिल्ली ने पी लिया होगा तो सारे दिन तकलीफ भोगनी पड़ेगी। 'छोटे बाबू कलकत्ता रहते हैं। कही चाय माँग ली तो?"

और कासी लपक कर चली गयी।

सेठानी सोचती रही, सोचती रही। फिर अतीत की आँधियाँ उसके दिमाग मे चलने लगी। इतनी अवसाद और पीड़ा से आहत हो गयी कि उसे लगा कि वह टूट जायेगी ! उसे अपनी कोख के आगे क्या पराजय स्वीकार करनी पड़ेगी ? उसका मान, तेज और अकड़ सब मिट्टी मे मिल जायेगें।

जब मस्तिष्क मे तनाव अधिक हो गया तो वह तम्बाकू की चाँदी की डिबिया निकालकर सूँघने लगी। दो-तीन चुटकी भर तम्बाकू नाक के द्वारा मस्तिष्क को छुआ तो उसका तनाव कम हुआ !

उसने अपने मालिये के दरवाजे उढका लिये। खिड़की बंद कर ली।

पंखा धीरे-धीरे चालू कर दिया।

पर सेठानी को नींद कहाँ ? एक पर एक विचार आते रहे।

जिस अतीत से वह कटना चाहती थी, वह उसको याद आने लगा।

आत्मालोक के विशाल पट पर वह साकार होने लगा —

उसका बाप जैमलसर का रहने वाला था। फोग और बेर की झाड़ियों के बीच बसा यह गाँव धोरों (रेत के टीबों) से घिरा हुआ था। ब्राह्मण, बनिये व राजपूत और अन्य जातियाँ वहाँ रहती थीं।

चाँदा का जन्म ऐसे घर मे हुआ था जहाँ खेती-बाड़ी थी और उस गाँव की खेती-बाडी राम भरोसे थी। यदि आषाढ़-सावन सूखा चला जाए तो मरुधरा प्यास के मारे तरसने लगती है। पेड सूखने लगते हैं और धरा तरेड़ों के कारण एकदम विद्रूप और विकृत लगने लगती है। सारे मरुधर-वासी याचना-भरी आँखों से आकाश की ओर देखने लगते हैं। हर घडी हर पल प्रार्थना करते है —

हे इन्द्र भगवान,

तू बरस और हमारी उदरपूर्ति कर !

फिर कही बूँदा-बाँदी हो गयी तो खेतों मे अनाज की जगह घास हो जाता था। उस घास से पशु-पालन होता था। यदि घास ज्यादा होता था तो उसे लोग ऊँटों पर बड़ी-बडी दो काले ऊन की बनी 'छांट्या' मे लादकर बीकानेर की ओर ले चल पड़ते थे।

महीने मे पाँच-सात गेडे हो जाते थे जिससे जरूरतों की पूर्ति होती थी।

चाँदा का बाप जेठमल भी खेती और पशु-पालन का काम करता था। उसके पास पचास गायें थी। उन गायों की बदौलत उनके परिवार का पोषण होता था।

चाँदा जन्म से ही सुन्दर और शुभ थी। उसके पिता का कहना था कि चाँदा के जन्म के बाद उसका धन बढ़ा है। पहले उसके पास पाँच गायें थी। धीरे-धीरे गायें बढते-बढ़ते दुगुनी हो गयी।

चाँदा चाँद-सी सुन्दर थी। हालाँकि जेठमल गेंहुए रंग का था पर चाँदा की माँ 'नाथी' पूंगलगढ़ की पद्मिनी जैसे लावण्यमयी एवं आकर्षक

थी। चाँदा अपनी माँ पर गयी थी। माँ का एक रोम भी नही छोड़ा। हू-ब-हू माँ। इसलिए उसका नाम भी चाँदा रखा गया।

चांदा के घर दाल-रोटी की कमी नही थी। सुबह बाजरी की रोटी, छाछ, राब, कभी-कभी मोंठ की दाल बनती थी। शाम के समय बाजरी का खिचड़ा और दूध, छाछ ! घी-मक्खन का उपयोग कम होता था।

वैसे घी बेचा जाता था। घी को बेच कर उपयोग की गई वस्तुएँ खरीदी जाती थी। उसका बाप उसका खूब लाड़-कोड करता था। उसकी दादी गवरा जो घर मे रहकर भी घर से कटी-कटी रहती थी ! कच्चे घर के आगे जो नौरा (खुली जमीन) पड़ता था, उस नौरे के दरवाजा के पास ही उसने कच्ची सालकी बना रखी थी। उसमे दरवाजा नही था। उस सालकी मे एक कोने मे पानी की मटकी, एक खाट, खाट पर तरह-तरह के कपड़ों की बनी रलकी। रलकी की सिलाई काफी महीन और कलात्मक होती थी। छोटी-छोटी सिलाई से एक गोलाकार व चौखाने टाकें बड़े ही अच्छे लगते थे। लकड़ी की एक पुरानी खूटी पर एक बटुवा लटका रहता था। उस बटुवे मे सूई-धागा, एक छोटा-सा चाकू, एक 'कतिया' (छोटी कैंची) रखा रहता थी। एक छोटा-सा आला था। उस आले मे एक बोदा सहगा पड़ा था। एक कोने मे कैर की लाठी पड़ी थी जिसकी चिकनाहट से लगता था कि इसे काफी तेल पिलाया हुआ है।

उसमे चाँदा की दादी गवरा का संसार था। खास घर-आँगन मे दादी किसी विशेष स्थिति में ही घुसती थी। वैसे उसका संसार सालकी और उसकी काली बिल्ली जिसे वह दुरगा कहती थी। काली बिल्ली के बारे में दादी कहती थी कि यह मेरे पूर्वजन्म की सगी बहिन है। पिछले जन्म में इसने मुझे बड़ा प्रेम दिया सो इस जन्म में मैं दे रही हूँ। इसके होते हुए पेटी मे जी-जिदावर नही आ सकते। सॉप-बिच्छु नही घुस सकते। यह उसकी रखवाली करती है।

दादी की उम्र अस्सी साल की थी पर वह साठ से ज्यादा नही लगती थी। थोडा-सा अफीम वह दोनो वक्त लेती थी साथ मे वह एक सेर दूध पीती थी। कभी-कभी वह दूध में घी मिला कर पी लेती थी।

दादी की पाचन शक्ति गजब की थी। बाल सफेद थे पर झुरियाँ

बहुत कम थी। आँखों से खूब दिखायी देता था। अगले तीन दाँत अवीय टूट गये थे पर दाढे साबूत थी। पाँवों मे चाँदी की दो कडियाँ थी, जिनका वजन आधा-आधा किलो था !

एक चार रग का कपड़े का बटुवा दादी की कमर पर हर वक्त झूलता रहता था। उस बटुवे मे दादी का अमल (अफीम) कुछ नकद रुपये और हनुमान जी की दो इंच की मूर्ति रहती थी जिसे वह हर सुख-दुख मे साथ रखती थी।

दादी उसे अपने से कभी भी जुदा नही करती थी। कमर मे बँधी डोरी की करधनी से बटुवा बँधा रहता था। दुविधा मे बाहर निकालकर ध्यान करती थी। फिर चाँदी का रुपया उछालती थी। उल्टे-सीधे पर ही उसका सारा हिसाब-किताब था। दादी का कहना था कि जिस दिन यह मूर्ति कोई चुरा लेगा, उस दिन वह बीमार हो जायेगी। सोने के पहले और जागने के साथ वह मूर्ति के दर्शन करती थी। उसका विश्वास था कि दुरगा मे भी उसके प्राण हैं। जिस दिन दुरगा होगी, उस दिन वह भी मर जाएगी।

तब चाँद सात साल की थी। वह जाघिया जरूर पहनती थी पर उसका शेष बदन नंगा ही रहता था। उसके बाल बड़े-बड़े थे जिन्हे उसकी माँ ने मीढ़ियाँ बना कर कस दिये थे।

सुबह हो गयी थी।

दादी तो गर्मी में चार बजे ही उठकर पहले बटुवे मे से हनुमान जी की मूर्ति निकालकर दर्शन करती। फिर जगल की ओर चल पड़ती थी। काफ़ी दूर धोरों पर चलती थी। जब सूर्य भगवान उग आते तो वह बेर की झाडियों से बेर तोड़ लाती थी। ये बेर उसके ओढ़ने के पल्लू में बंधे रहते थे।

जब घर लौटती तब चाँदा उसका इन्तजार करती रहती। दादी से बेर लेकर खाती ! जब बेर खत्म हो जाते तो वह बेर की गुठलियाँ तोड़-तोड़ कर उसका गोटा खाती थी।

इस बीच दादी, टीबों की रेत को छान कर दाँत साफ कर लिया करती थी। रेत को साफ करने का तरीका भी बडा ही विचित्र था। वह थोड़ी-सी रेत को हथेली पर मलकर धीरे-धीरे हाथ को हिलाती थी। कंकर व छोटे-छोटे कण रेत के चारों ओर आ जाते थे। वह उन्हें हटाती

रहती थी। चंद ही पलों में रेत एकदम साफ हो जाती थी। दादी का यही मंजन था।

मंजन करने के बाद दादी मुँह धोती थी। नहाने के नाम से दादी को मौत आती थी। अफीम खाती थी न ? अफीमवालों को पानी का भय लगता है।

मुँह धोने के बाद दादी अफीम खाती थी। उस पर एक सेर दूध पीकर फिर सो जाती थी। फिर दो-तीन घंटे नहीं जागती थी।

सर्दी की ऋतु थी। डांफर काँटे की तरह चुभती हुई चल रही थी। सर्दी के मौसम की उस दिन सबसे अधिक ठंड थी। इतनी अधिक कि कबूतरों के लिए मिट्टी के कूँडे में रखा पानी जम कर बर्फ हो गया था।

दादी ऐसे मौसम में सुबह नहीं जागती थी। दो जीर्ण-शीर्ण रजाइयों को ओढ़े पड़ी रहती थी। ऐसे ऋतु में दादी रूई की बनी बगलबंदी पहनती थी और वह भी पूरी बाँह की। चाँदा भी रूई की फतोई पहनती थी। चूँकि दादी पगरखी पहनती ही नहीं थी इसलिए उसने अपने हाथों से मोटे कपड़े के मौजे बना लिये थे जिसका डिजाइन जूतों की तरह था।

चाँदा एक पतली रलकी ओढ़े हुए दादी की झोंपड़ी में मुँह से सीत्कार निकालती आयी और आकर आश्चर्य से बोली, "दादी, दादी, आज तो डाफर इत्ती तेज चल रही है, कि आँखों में आँसू बार-बार आ जाते हैं और कूँडे का पानी तक जम कर बर्फ हो गया है।"

"बालनजोगी (जलाने लायक) तेरे मूँडे में बासती (आग) लगे, इत्ती खराब खबर मुझे क्यों सुनाने आयी है !" दादी के शरीर में मानो ठंडीटीप हवाएँ घुस कर उसे कंपा दिया हो। वह अपने को रजाई में और समेटती हुई बोली, "तू ने तो मेरा नशा ही उतार दिया। अब मुझे अमल (अफीम) फिर खाना पड़ेगा।"

चाँदा ने उससे सटकर बैठते हुए कहा, "दादी मुझसे भूल हो गयी। अब ऐसी अनुचित बात कभी नहीं करूँगी।"

"जा, भीतर से एक कटोरी में दूध लेकर आ'''।"

"अभी लायी दादी।"

चाँदा खाट से उतरी। उतरते ही उसकी नाक में से 'जाडा सेडा' बाहर निकल गया। वह भी दोनों छिद्रों से।

दादी के मन में *घिन्न-सी? जागी।* वह उसे डांटती हुई बोली, "गुगली रांड! तेरे नाक से बहते 'घी'को साफ कर।"

चाँदा ने जोर लगाकर सेडे को नाक मे वापस चढ़ा लिया और भाग गयी।

दादी फिर सोचने लगी ठड के बारे में। इतनी ठंड पड रही है कि पानी तक जम गया? फिर रगत (खून) जमने मे क्या देर लगेगी? मैं तो जब तक सूरज बाप आकाश के बीच नही आयेंगे तब तक सालकी से बाहर नहीं निकलूंगी। चाहे इरमा-बिरमा (ब्रह्मा) ही आकर क्यो न कह दें।

चाँदा दूध ले आयी थी। दादी ने अपने बटुवे में से अफीम निकाल कर खाया और गटागट दूध पी गयी।

चाँदा कुछ पल चुप रही। फिर बोली, "दादी! एक बात बतायेगी।"

"बोल।"

"यह ठंड, गर्म और वर्षा क्यों होती है? इसे कौन करता है?"

"चाँदा! यह सब भगवान करते हैं। भगवान की ही मर्जी से रितुएँ बदलती है। बरसा होती है, अकाल पड़ते हैं, मिनख (मनुष्य) जन्मता और मरता है। छोरी! भगवान की माया तो अपरम्पार है।"

चाँदा सोचती रही। फिर बोली, "तभी लोग मंदिर जाते हैं।"

"हाँ, मंदिर जाने से हम सबकी मनोकामना पूरी हो जाती है।··· पर तू यह सब क्यों पूछती है!"

"मैं नही पूछती·· यह मुझसे कल सतूड़ी ने पूछा था। तब मैंने उसे बताया था कि दादी को पूछ कर बताऊँगी। अब मैं भी उसे कह दूंगी कि यह सब भगवान करते हैं पर सतूडी कहती थी कि बरखा तब होती है जब इन्दर देवता पेशाब करते हैं।"

"तेरा सिर···। अरे पगली, जब भगवान शंकर अपना शंख बजाते हैं तब बरसा होती है।"

उसी समय भागीडे जाट की बहू दादी की सालकी में आयी और घबरा कर बोली, "दादी···दादी···जल्दी चलो, परमे की बहू की तबीयत खराब हो गयी है।"

"क्यों, क्या हुआ ?" दादी चौंक कर बोली। उसकी अनुभवी आँखें फैल गयीं।

"एकाएक पेट में जोरदार दर्द होने लगा। बेचारी गिलारी (छिपकली) की कटी पूँछ की तरह तड़प रही है, जल्दी चलिए।"

"कौन-सा महीना है ?"

"नौवाँ।"

"राम ··राम ! तुम सबकी अक्ल घास चरने चली जाती है। जब नवाँ महीना लग गया तो मुझे दो-तीन बार दिखाना चाहिए। मैं तो हाथ लगाते ही समझ जाती हूँ कि पेट में बच्चा किस स्थिति में है ? यदि आँटा-टेढ़ा भी हुआ तो मैं अपनी उँगलियों से मसल कर सही स्थिति में ला सकती हूँ। मुझ पर हनुमान बाबा की किरपा है।·· अब कहीं मामला हाथ से निकल गया तो ? ··अरी पागल ! मसाण (श्मसान) बार-बार थोड़े ही देख जाते हैं ! मसाण तो एक बार ही जाया जाता है।"

"दादी सब गलतियाँ हम लोगों की हैं पर अब तुम जल्दी-जल्दी चलो।"

चाँदा ने पलकें उठा कर देखा। फिर कहा, "दादी, तुमने कहा था न कि मैं इस थर्राने वाली ठण्ड में घर से बाहर नहीं जाऊँगी।"

"चुप कर मिरच, मेरे होते हुए कोई जापेवाली (जच्चा) लुगाई कष्ट पायेगी ? ··चल भागीडे की बहू···यह चाँदा मिरच की तरह तताँया है। झट-से बात पर बात मारेगी। जित्ती छोटी है उत्ती ही खोटी है।"

चाँदा चुप रही।

दादी ने बटुवा निकाल कर हनुमान बाबा के दर्शन किये फिर अपनी लाठी लेकर चल पड़ी। चलने के पहले उसने रुपये निकालकर चित्त-पट किया !

चाँदा गम्भीर हो गयी। नाक में से सेडा एक बार फिर निकला। इस बार उसने सिणक कर झोंपड़ी के घास की ओर उड़ा दिया। फिर कमीज से हाथ पोंछ लिया।

और पीठ ढँकी हुई थी।

उसने एक लकड़ी उठा ली। फिर वह गायों को गौरे से बाहर निकालने लगी।

सेजड़े के नीचे कई टाबर-टीगर इकट्ठे हो गये थे। चाँदा भी वहाँ पहुँच गयी। सेजड़े के चारो ओर कच्ची चौकी बनी हुई थी, उस पर सब बैठे थे। चाँदा की खास सहेली सतूड़ी बैठी थी। चाँदा को देखते ही उसने अपने पास जगह की, "हट रो होलकी, चाँदा नैं बैठण दे। यह मेरी खास भायली (सहेली) है।

होलकी खिसक गयी।

चाँदा बीच में बैठ गयी। सतूड़ी और होलकी उस के दोनों ओर।

जब वे तीनों अच्छी तरह बैठ गयी तब चाँदा ने कहा, "डाँफर ऐसी चल रही है कि जाने सूइयाँ चुभ रही है।"

सतूड़ी ने झट से कहा, "मेरी एक गाय तो मरती-मरती बची। ठण्ड से अकड़ गयी। फिर काके (पिता) ने रात को आग जलायी तब गाय को शान्ति मिली।"

होलिका ने कहा, "जरूर कहीं बरखा हुई है। हवा गीली-गीली लग रही है न?

चाँदा ने गीगले को चूम कर कहा, "आओ, सूरज बाप को मनाओ।"

फिर सारी लड़कियाँ मिल कर गाने लगीं—

काढो रे सूरज बाप तावड़ियो

जिए म्हारो डावड़ियो ·

धूप तेज और तेज हो रही थी।

☐

☐

चाँदा दोपहर का खाना खाकर मन्दिर के पीछे चली गयी। उसके साथ उसका दो साल का भाई गीगला था। इस समय उसने घुटने तक का कुर्ता पहन रखा था जो हाथ से सिला हुआ था। धूप खूब तेज हो गयी थी। रेत तपने लगी जिससे सुबह की ठण्ड का अहसास खत्म हो गया था।

मन्दिर पर फटी हुई ध्वज लहरा रही थी। भैरव का मन्दिर था।

उसके पास बेर की घनी झाड़ियाँ थी। दो-तीन 'आक' भी उगे हुए थे। दूर रेत में फोग की झाड़ियाँ दिखाई दे रही थी।

जब चाँदा मन्दिर के पास पहुँची तो वहाँ केसिया खड़ा था। केसिया पण्डित गोविंद का बेटा था। उसने जाँघिया और कई पैबन्द का कुर्ता पहन रखा था। उसके सिर पर छोटे-छोटे बाल थे पर चोटी गूँथी हुई थी जिसमें ताम्बे का एक 'मादलिया' भी था। उसके साथ पनिया था, भैरिये कुम्हार का बेटा। पनिये के बाल विचित्र ढँग से कटे हुए थे। आधा-आधा इंच के बाल। खोपड़ी के दोनों ओर दो दरवाजे। लम्बी चोटी।

चाँदा को देखते ही केसिये ने कहा, "आज देरी से कैसे आयी?"

"दादी कहीं गयी हुई थी, तुझे नहीं पता, मैं दादी के बिना रोटी नही खाती।"

"कहाँ गयी है वह।"

"तू तो जानता है दादी दूसरों के काम मे ही लगी रहती है। आज भाईजी नाराज हो गये। आते ही दादी को बकने लगे। बोले, "माँ! तू जरा घर की चिन्ता किया कर···बता, तू दिनूंगे (सुबह) दिनूँगे घर से निकली थी, औ अब आयी है। यह तू अच्छी तरह जानती है कि तेरे बिना तेरी पोती चाँदा और तेरी बिल्ली दुरगा खाना नही खातीं।"

"तो क्या दोनों भूख से मर गये क्या?"···दादी ने भड़क कर कहा, "मैं तो किसी को मरते हुए नही छोड़ सकती। यदि मैं नहीं जाती तो परमे की बहू के प्राण ही निकल जाते। पेट में बच्चा टेढ़ा था। टेढ़ा बच्चा कितना दोरा (कठिन) जन्म लेता है। जरा-सी लापरवाही जच्चे-बच्चे दोनों को राम-राम सत्त कर देती। अपने पेट की जरा-सी आग के लिए मैं दूसरों के घर में भीषण आग नही लगा सकती।·· बेटे! रीस मत कर ·· धीरज से सोच···अपने सुख के लिए तो सभी दौड़ते हैं पर पराये सुख के लिए दौड़े, तभी जीवन सफल होता है।"

इस बीच बिल्ली दुरगा दादी के पास आकर अगले पाँव ऊँचे करके 'सचेत' मुद्रा में बैठ गयी।

"पर माँ जब तू देर-सबेर से आती है तब घर की सारी व्यवस्था गड़बड़ हो जाती है। घर की स्त्रियाँ कित्ती देर चूल्हे के आगे बैठी रहेंगी

और भी तो काम-धन्धे हैं ?"

दादी का स्वभाव उग्रवादी था। कठोर वचन और गुस्सैली मुद्रा सहने की उसकी जरा भी आदत नही थी। शुरू से ही उसका स्वभाव जरा-सी बात पर बुरी तरह बिगड़ जाता था। सुना जाता है कि दादी के उग्र स्वभाव के कारण ही उसकी अपने पति से कभी अच्छी तरह नहीं बनी। दिन मे दो चार झगड़ा तो होता ही था। दादी बात-बात मे नाराज हो जाती थी। फिर अपना सारा गुस्सा रोटियों पर निकालती थी। खाना नही खाती थी। एक ही वाक्य बार-बार दोहराती रहती थी, "जिसकी खाते बाजरी उसकी भरते हाजिरी।"‥ मतलब जो रोटियाँ खिलायेगा उसकी चाकरी करनी ही पड़ेगी।‥‥फिर चाहे पूरा दिन ही बीत जाए दादी रोटी नही खाती थी।‥ दादा मना-मना कर हार जाता था।‥ कहते हैं कि जब दादा इस बात की सौगन्ध खाते कि वह अब उसे कभी कुछ नही कहेगा तब दादी अपना अनशन तोड़ती।

दादी अपने स्वभाव को नही बदल सकी। आज भी वह उतनी ही उग्र थी।

दादी मेरे भाईजी की बात सुनते ही भड़क उठी। हवा में हाथ उछालती हुई बोली, "दुनिया भर के काम-धन्धे क्या मैंने फैला रखे हैं ?‥‥दो रोटी खाती हूँ उस पर सौ बात सुनाते हो।‥‥जाओ, अपनी रोटियाँ अपने पास रखो। मैं तुम लोगों की रोटियों के विसर नही रहती हूँ। हीरे की बहू ने हजार मिन्नतें की थी कि दादी थोड़ा-सा हलुवा खा लो पर मैंने सोचा कि जिस घर पर उपकार किया जाय, उस घर का दाना भी मुंह मे डालना पाप होता है।‥‥

"माँ ! तू बात का बतगड़ बना देती है। मैंने तो घर की सुविधा के लिए कहा और तुम तो बस लाय-फलीता बन गयी।‥‥यदि जाना ही था तो हमे कह जाती।"

दादी की आँखें आश्चर्य से फैल गयी। उसकी आकृति पर हलकी-सी झुर्रियों का आभास हुआ। बोली, "अब मैं इन दो-दो कौड़ी की बहुओं से आज्ञा लेती फिरूँगी ? देखा इनका रुआब ? ये मेरी सासुएँ नही हैं, मैं इनकी सास हूँ। कान खोलकर सुन ले जेठू‥‥मैं किसी की तावेदार नही कि

उनके इशारे पर उठूं-बैठूं ।"

"मां ! तुम्हें तो बड़ा क्रोध आता है ।"

"क्रोध कायर को नही आता है। मैं किसी की परवाह नही करती।" दादी ऐसे बोली जैसे सटाक्-सटाक् चाबुक मार रही हो।'

"अच्छा, अब क्रोध को थूक कर तू रोटी खाले।"

"रोटी तू तेरी बहुओं को खिला। तेरी मां लूली-पागली नही है। अभी तो सारे गांव की पीड़ मे काम आती है। एक हथेली पसारूंगी तो दस रोटियां आयेंगी। मैं ताने की रोटियां नही खाती।"

चांदा घबरा गयी थी। वह जानती थी कि दादी ने हठ पकड लिया तो सारा दिन बीत जायेगा। फिर वह खाना नही खायेगी और यदि दादी खाना नही खायेगी तो वह भी नही खायेगी।

चांदा बीच मे बोली, "दादी ! माफ करदे सबको। खाले। यदि तू नही खायेगी तो मैं भी नही खाऊंगी और यह बेचारी दुरगा भी मुंह मे अन्न-दूध नही डालेगी।"

"फिर मेरे साथ भूखे मरो।" दादी ने आंखें नचाकर कहा, "मैं तानें की रोटियां नही खा सकती।"

जेठमल ने दादी को हाथ जोड कर कहा, "मां ! ले मैं तेरे पांव पड़ना हूं।" और उसने झुककर दादी के पांव छू लिये, "तू तो सबकी मां है, सबका कष्ट हरती है, फिर क्या तू मेरा कष्ट नहीं हरेगी ? मैं तेरे चरणों पर नाक रगड़ता हूं।"

सचमुच जेठमल अपनी मां के चरणों मे गिर गया। दादी के चेहरे पर कई तरह के मिले-जुले भाव आये। फिर उसने कहा, "आगे से तू तेरी घरवाली को समझा दे कि रोटी के लिए मुझसे राड न करें। मैं अपनी इच्छा से ही खाऊंगी-पीऊंगी।"

चांदा दादी की कमर मे झूलकर उत्साह से बोली, "दाद ी बच्छी हो। भाईजी ! आप बाई को कह दें कि वह थाली आ रही हूं और दुरगा के लिए दूध मे रोटी चूर दे। क्यों

दुरगा ने पूंछ ऊंची की और म्याऊं बोली।

दादी बैठ गयी।

वह काफी गंभीर थी। फिर बड़बड़ा उठी, "मुझे अकड़ दिखाता है? अरे मुझे तीन सौ छप्पन जने खाना खिलाने वाले हैं।"

'हाँ दादी, तू तो सारे गाँव की दादी है। लोग कहते हैं कि दादी के हाथ में जादू है। वह जिस मरीज में हाथ लगाती है वह ठीक हो जाता है पर लोग यह भी कहते हैं कि दादी को गुस्सा बड़ा आता है। यह सोने की थाली में लोहे की कील का काम करता है।"

'चुप हो जा और जा जल्दी से खाना ले आ।"

चाँदा एक काँसे की थाली में दादी के लिए दूध-रोटियाँ, अपने लिए घी लगी रोटियाँ व गुड़ और दुरगा के लिए मिट्टी के बर्तन में दूध-रोटी ले आयी।

फिर तीनों साथ-साथ खाने लगे।

□
□

जेठमल घास बेचने के लिए शहर गया हुआ था। घर में जेठमल के दो छोटे भाई मानमल और जीतमल थे जो पशुओं का काम-धंधा संभालते थे।

इस बार जेठमल शहर से लौटा तो बड़ा खुश था। आते ही उसने दादी की सालकी में दादी, अपने दोनों भाई, उनकी बहुएँ तथा अपनी बहू को इकट्ठा किया।

चाँदा पहले से ही आ गयी थी। वह दुरगा को गोद में लिए बैठी थी।

दादी ने सबको अपनी दृष्टि में भरा। बहुएँ लम्बे घूँघट में लिपटी हुई थीं। सभी के मन में जिज्ञासाएँ जाग रही थीं।

दादी ने हुक्मराना अंदाज में पूछा, "क्यों सबको इकट्ठा किया है?"

"चाँदा, तू जा···घर के भीतर जाकर बैठ जा। गीगले ने रमा···"

"नहीं, मैं यहीं बैठूँगी।"

"लाडी! बड़ों की बात माननी चाहिए। जा बहुत सयानी है न?"

दादी ने आँख का संकेत करके कहा, "जा, लाडेसर जा, मैं तुझे फिर बुलवा लूँगी।"

चाँदा दुरगा को लेकर चली गयी।

दादी ने गंभीर होकर पूछा, "हाँ,क्या बात है जेठू ?"

"माँ ! मैंने चाँदा के लिए एक चोखा और फूठरा (सुन्दर) लड़का देखा है। खानदान भी अच्छा है। छोरा हिसाब-किताब करना सीख रहा है। थी·· दा···ता···धन को[1] का अच्छा अभ्यास कर लिया। वाणिका की चिट्ठियाँ पढ़ लेता है। हुशियार है।"

"जाति क्या है ?"

"दम्माणी·· बस, एक ही कमी है।"

"क्या ?"

"घर की स्थिति अपन जैसी है।"

"क्या मतलब ?" दादी ने जेठू को घूर कर पूछा, "साफ-साफ बता ?"

"माली हालत चोखी नही है। लड़के मे कोई कमी नही है। लड़के का मामा भी अच्छा है। बाप बेचारे का बचपन में ही मर गया था। मामा बड़ा खाता-पीता है। नानी का अपने दोहिते पर बडा ही मन है, इसलिए उनकी जीवन की चक्की चल रही है !···छोरे की माँ और नानी दोनों ने बातों ही बातों में मुझे पूछा कि क्या जाति है। मैंने बताया कि राठी।··· उन्होंने पानी पिलाया, फिर इधर-उधर की बातें होने लगी।···जब मैं उठने लगा तो छोरे की नानी सरसुती बाई ने कहा– यदि आप छोरी हमारी झोली में देना चाहें तो किरपा होगी। ननिहाल डागा है।···बहुत चोखा खानदान है। इसी बीच छोरा भी आ गया। बहुत फूठरो है। अब आप लोग चाहें तो मैं बात पक्की कर लूं।

जेठमल का भाई जीतू बोला, "भाई साहब, गाँव की लड़की शहर में कैसे रहेगी ? शहर वालों को तो पढ़ी-लिखी और समझदार छोरी चाहिए।"

"समझदार तो संगत से आदमी बनता है। पढने से गुणना ज्यादा अच्छा होता है। कहावत है—काले के पास गोरा बैठे रंग नही तो अक्ल जरूर बदल जाती है, अक्ल तो संगत से आती है।" दादी ने बड़प्पन से कहा, "कोई खुद ही चाह कर बेटी मांगे तो बेटी को बाप को ना-नू नही करनी चाहिए। बहू लिछमी होती है, उसे आदर से लाना चाहिए, फिर ठहरो।"

---

१. मारवाड़ी भाषा के अक्षर,

दादी ने अपने लटकते हुए बटुवे को खोला। उसमें से हनुमानजी की मूर्ति और एक रुपया निकाला।

उसने आँखें मूंद कर हनुमानजी की प्रार्थना की। फिर रुपये को उछाला।

रुपया उछलता हुआ नीचे गिरा। वह चित्त था।

दादी ने सगर्व घोषणा की, "रिश्ता कर लिया जाय। हनुमान बाबा ने हुक्म दे दिया है। मुझे पक्का विश्वास है कि छोरी घी से कुल्ले करेगी।

वैसे भी दादी की घोषणा सर्वोपरि होती थी। सबने इसे स्वीकार कर लिया कि अच्छा मुहूर्त देखकर सगाई कर दी जायेगी।

□
□

"चाँदा।"

"सच-सच बता। क्या तेरा ब्याह होने वाला है?"

"मुझे मालूम नही।"

"अरी कान मे कौर मत ले।" सतूड़ी ने उसके गाल पर चुटकी मार कर कहा, "मैं कोई तेरे धणी (पति) को छीन नही लूंगी।"

चाँदा ने सतूड़ी की आँखों में आँखे डालकर कहा, "मुझे सच्ची नही मालूम। मैंने भी सुना है कि मेरा ब्याह शहर मे होगा।"

"कब?"

"मुझे नही मालूम।"

"तुझे गाँव छोड़ना अच्छा लगेगा।"

"नही।"

"फिर?"

"अरी ब्याह तो माँ-बाप ही करते हैं।" चाँदा ने लम्बा साँस लेकर कहा।

"लड़का कैसा है?"

"सभी कहते हैं — एकदम फूठराफरा 'सुन्दर'।"

"तेरे भाग चोखे हैं।"

"तो तू भी ब्याह कर ले?"

"मैं कैसे ब्याह कर लूं ? ब्याह तो छोरे-छोरी के माँ-बाप तय करते हैं।" सतूड़ी ने बताया, "और छोरी अपने मुंह से ये बातें कैसे कहे ? हाँ, तेरे जाने के बाद मुझे गाँव में सब कुछ सूना-सूना लगेगा।"

चाँदा ने कुछ पल सोचा। फिर कहा, "मैंने एक उपाय सोचा है।"

"क्या ?"

"तेरा ब्याह भी हो सकता है।"

"कैसे ?"

"मैं दादी को कहकर तेरे माँ-बाप को कहलवा दूंगी। दादी की बात कोई नही टालता।"

सतूडी की आँखें चमक उठी। बचपन मे बच्चो को केवल जिज्ञासाएँ व उत्सुकताएँ रहती हैं। व्यावहारिक जगत का उन्हे ज्ञान नहीं होता ? यही स्थिति इन दोनों बच्चियों की थी।

"हाँ चाँदा, तेरी दादी की कोई बात नही टाल सकता।"

"बस, तेरा भी काम बन गया। तू भी अपने सासरे चली जायेगी ! सब लुगाइयाँ गायेंगी।"

वनखंड री ओ कोयल
वनखंड छोड कठै चाली
म्हांरा बाबुल बोल्या बोल
निभावण म्हैं चाली…

चाँदा का सुर बहुत ही सुरीला था। कभी-कभी उसके व्यवहार से लगता था कि वह छोटी होते हुए भी एक बड़ी उम्र रखती है, समझ की बड़ी उम्र।

सतूड़ी मंत्र मुग्ध-सी विदाई गीत सुनती रही। चाँदा का गाते-गाते गला भर आया। नैन तरल हो गये।

सतूड़ी उससे लिपट कर बोली, "बस कर…मेरी भायली…बस कर… तेरे गीत से तो कलेजा मुंह को आ रहा है।"

दोनों सहेलियाँ सुबकती रही।

□
□

सावन आ गया था।

सांझ ढल रही थी।

लौटते हुए पशुओं के गलों में बंधी घंटा ध्वनियों की मधुर आवाज आ रही थी। बीच-बीच में बड़ा घंटा टन्-टन्-टन् बोल कर अपना अलग अस्तित्व बता रहा था।

यह घंटा कबरी गाय के गले में बंधा हुआ था। यह गाय चाँदा की थी पर थी बड़ी ही बदमाश। सदा भागकर जंगल मे बड़ी-बड़ी फोग-झाडियों के बीच छुप जाती थी। फिर ढूंढने मे बड़ा समय लगता था। साथ-साथ वह दूसरी गायों से बहुत ही लड़ती थी। इन सभी स्थितियों से निपटने के लिए उसके गले मे बड़ा घंटा बांध दिया गया। घंटे की आवाज के साथ उसकी हर हरकत को समझ लिया जाता था।

गायों के पीछे-पीछे दस-बारह वर्ष की चंद लड़कियाँ आ रही थीं। जाँघिया और कुर्त्ता पहने। उनके सिरों पर ईंढ़णियाँ थी। ईंढ़णियों पर कढ़ाइयाँ रखी हुई थीं जिनमे गोबर भरा हुआ था।

सारी लड़कियाँ नगे पाँव थी। आधी लड़कियों के हाथों-पाँवों पर मैल जम गया था जिससे उनके हाथ-पाँव काले-काले लग रहे थे।

ये लड़कियाँ गिद्ध दृष्टि से गायों को देख रही थीं।

जैसे भी गायें 'पोटा' करती वैसे ही कोई छोरी जोर से कहती, "ओ पोटो म्हे देख्यो।"

यानी यह पोटा मैंने देखा। जो छोरी देखती, वही उस पोटे (गोबर) की हकदार होती?

यदि दो छोरियाँ साथ-साथ कहती तो पोटे मे हिस्सा हो जाता था।

ये गरीब घर की लड़कियाँ दिनभर धूसर इलाकों में गायों के पीछे-पीछे घूमती रहती थी।

वैसे भी सावन में दो बार बारिश होकर इन्द्र देवता रूठ गये थे। आकाश धोया-धोया लग रहा था। नीलापन साफ हो गया था पर जंगल मे पशुओं के लिए घास हो गयी थी।

खेतों में हल चला दिये गये थे।

अब वर्षा की प्रतीक्षा थी। यदि वर्षा नहीं हुई तो खेत मे फूटे बीज या तो जल जायेंगे यदि हवाएँ तेज चलने लगी तो वे मिट्टी के नीचे दब जायेंगे। इस तरह फिर वही अकाल जो हर तीसरे साल तो पड़ता ही है।

चांदा, दादी और दुरगा सालकी मे बैठी थी। दादी उदास थी। गंभीर थी।

चांदा ने पूछा, "दादी ! तू उदास क्यों है ?"

"मैं उदास अपने लिए नही, बेचारे मेघे के कारण हूँ। उस पर शीतल माता (चेचक) का प्रकोप हुआ है—मुझे सन्देह है कि वह कही अधा न हो जाए · दो दाने आँखों में निकल आये है। यदि अंधा हो गया तो बेचारे की जिंदगी तबाह हो जायेगी।"

"शीतल माता उनको अंधा क्यों करेगी ? वह तो माँ है।"

दादी ने झट से कहा, "हाँ, वह माँ है।···उस माँ को ठंडा किया जाता है। तुम तो जानती हो बेटी, आजकल लोग धर्म-कर्म करते नही। आस्था-विश्वास भी कम हो गया है। यदि आदमी नियम से चले तो ऐसा नहीं हो सकता। · इस मेघे ने जरूर चैत्त बदी अष्टमी यानी सीवल··· अष्ठमी को जरूर गर्म खाना खाया है। उस दिन जो ठंडा खाता है उसे शीतला माता ठंडा करती है।"

"अब क्या होगा ?"

"होगा वही जो भाग में लिखा होगा। फिर आजकल लोग सीवल खुदवाते नहीं ? यदि सीवल को हाथ-पर खुदवाले (टीका लगाले) तो सीवल (चेचक) निकले ही नही। देख, मेरे तो इस उम्र मे भी कितने बड़े-बड़े वण (दाग) है ?"

दादी ने अपने दाएँ हाथ को दिखाया। उस पर रुपये के आकार के चेचक खुदवाने के दाग थे।

"बड़े वण हैं।"

"हाँ, उपाय-जतन तो करना ही चाहिए।"

दुरगा गीली मिट्टी पर सोयी हुई थी। कभी-कभी वह अपने अगले

पंजों से मुँह खुजा लेती थी।

चाँदा बाल सुलभ भाव से देख रही थी।

एकाएक वह बोली, "दादी! फूली दादी है न, मनोवर की दादी, वह कह रही थी कि तेरी दुरगा बिल्ली मुझे दे दे!"

"क्या? उसने दुरगा को माँगा। उस खसमखावणी का मूंडा (चेहरा) फूठरा घणा!···इस बार वह दुरगा की बात करे तो उसका मूंडा झाड़ देना।···चाँदा।" सहसा दादी के चेहरे पर मखमली उदासी छा गयी। आवाज़ में गहरापन आ गया। बोली, "यह दुरगा केवल बिल्ली नहीं है, मेरे प्राण है। मेरा जी इसमें डाला हुआ है, जिस दिन यह मर जायेगी, उस दिन तेरी दादी भी मर जायेगी।"

जैसे यह 'वाक्य' बिल्ली ने सुन लिया हो, वह गुर्रा कर दादी के पास आ गयी। आकर दादी की गोद में बैठ कर उसका हाथ चाटने लगी।

हाथ चाटते-चाटते दुरगा को क्या सूझा कि उसने छलाँग भरी और कोने में जाकर अपने पंजों को जोर-जोर से मारने लगी।

दादी ने देखा कि एक हथेली जितना खूँखार बिच्छू पड़ा था।

दादी के मुख से हठात् चीख-सी निकल पड़ी, "अरे बाप रे, यदि किसी को यह बिच्छू काट लेता तो वह पानी ही नहीं माँगता।"

चाँदा भाग कर चिमटा ले आयी। दादी ने बिच्छू को उठाकर बाहर फेंक दिया। फिर वह दुरगा को गोद में लेकर चूमने लगी, "लाडी! तू तो मेरे लिए माईतो (माँ-बाप) का काम कर रही है।"

चाँदा ने दादी की गोद में से दुरगा को ले लिया और वह उसे सहलाने लगी।

इसी समय जेठू हड़बड़ाया हुआ आया। वह पसीने से तरबतर था। उसकी आँखों में आशंकाओं व भय के मिलेजुले भाव थे।

गमछे से पसीना पोंछ कर वह झोंपड़ी के आगे बनी कच्ची मिट्टी की चौकी पर बैठ गया और लम्बे-लम्बे साँस लेने लगा।

"क्या बात है, तू इतना घबराया हुआ क्यों है?" दादी ने सन्निकट आकर पूछा।

"आज तो मैं मरता-मरता बचा।

"क्यों ?" दादी की आँखें भय से फैल गयी । उसने अपने दोनों हाथों को जेठू के सारे शरीर पर घुमाया जैसे वह सारे अंगों की जाँच कर रही हो ?

जेठू ने चाँदा की ओर देखकर कहा, "जा, एक लोटा पानी का भर ला।"

चाँदा ने सालकी में रखी मटकी में से जेठू को पानी पिलाया ।

जेठू ने लम्बा सांस लेकर कहा, "माँ । मैं खेत में रखे घास को ठीक कर रहा था कि एक कलन्दर (साँप) फुत्कारता हुआ बाहर आया। मैं तुरन्त सचेत हो गया ।

कलन्दर मेरे सामने फन उठाकर खड़ा हो गया । मैं पीछे हटा तो वह और आगे बढा । मैंने सोचा कि आज इसकी नीयत ठीक नहीं है । तो भी मैं पीछे हटता रहा । शायद अनजाने में उसे चोट आ गयी हो ! जब उसने पीछा करना नहीं छोड़ा तो मैंने लाठी से उसे मार डाला । मारकर उसे फोग की झाड़ी पर लटका दिया । अभी कुछ समय गुजरा ही था कि एक और साँप आ गया । ''मैंने सोचा कि यह उस सांप की सांपिन है । मैं भागा-भागा घर आ गया । वह साँपिन जरूर मेरा पीछा करती आयेगी ।…"

दादी ने उसे धैर्य देकर कहा, "चिंता की कोई बात नहीं । जब तक इस घर में दुरगा है साप-बिच्छू-चांडी-पड़ नहीं आ सकती ।"

जेठू की आशका सही निकली । लगभग दो घंटे के बाद नागिन आ गयी । उसके आने का आभास बिल्ली दुरगा को हो गया !

दुरगा त्वरा से बाहर निकली । वह नौरे की कच्ची दीवार पर बैठ गयी ।

तीन दिन बीत गये ।

चौथे दिन जैसे ही नागिन ने बिल में से निकल कर घर की ओर प्रस्थान किया वैसे ही दुरगा ने छलांग लगाकर उसका मुँह पकड़ लिया। नागिन छटपटाने लगी । उसने दुरगा के चारों ओर लपेट मारी पर दुरगा घबरायी नहीं । देखते-देखते नागिन मर गयी ।

दुरगा लौट आयी । उसके मुँह पर लगे खून को देख कर चाँदा और दादी भागे। देखा तो नागिन मरी हुई थी ।

सबने दुरगा की प्रशंसा की। दादी ने उसका मुँह धोया। दूध पिलाया।

जेठू ने कहा, "अरे माँ, आज इस बेचारी को घी पिला दे।"

दादी हँस कर बोली, "औरत के पेट में बात पच जाय तो मिन्नी (बिल्ली) के पेट में घी पचे।"

चाँदा ने कहा, "दादी! दुरगा तो सचमुच बड़ी समझदार है।"

"चाँदा! आजकल आदमी से ज्यादा जानवर समझदार होते है।"

और दादी ने आकाश की ओर देखा ही था कि चंदू लुहार आ गया। उसने आकर कहा, "दादी! मेरी घरवाली को उलटियों पर उलटियां हो रही है। जरा चल कर देख ले।"

दादी ने बटुवे में से हनुमान जी की मूर्ति निकाली। रुपये से चित्त पट किया और चल पड़ी।

□

□

पूरे सात साल बीत गये।

इन सात सालों में कई परिवर्तन आये। कुछ ऐसे परिवर्तन भी थे जिनका किसी को अनुमान नहीं था। चाँदा की शादी के बाद अचानक एक दिन स्वस्थ और कड़क दादी का देहान्त।

चाँदा को वह घटना अच्छी तरह याद है। उस दिन दादी घबरा कर कह रही थी कि उसकी बिल्ली दुरगा नहीं मिल रही है। दुरगा को खोजने की हड़बड़ी में उसका सास की तरह शरीर से चिपके रहनेवाला बटुवा भी गायब हो गया है।

ये दोनों घटनाएं दादी के समस्त विश्वासों को तोड़नेवाली थी। उसे बार-बार महसूस हो रहा था कि यदि ये दोनों चीजें उसे नहीं मिली तो वह जीवित नहीं रह सकती।

चाँदा भी दुरगा के लिए रोने लगी।

चाँदा के सिर पर बोर, हाथों में हाथी दाँत का बना चुड़ला, कानों में मुरलियां और बालियां। गले में एक साकल, पाँवों में पत्ती पायल।

वह सीधी सतूड़ी के पास गयी।

"सतूड़ी ! मेरी दुरगा कहीं खो गयी है, सभी उसे ढूँढ़ रहे हैं, चलो हम भी ढूँढ़ें ।"

चाँदा और सतूड़ी भी बिल्ली को खोजने चल पड़ीं ।

दादी की परेशानी के कारण न केवल उसके बेटे ही नही बल्कि दादी का मान-सम्मान और प्यार करने वाले सब के सब गाँववाले दुरगा बिल्ली और उस बटुवे को खोजने निकल पड़े ।

पर शाम तक न तो बटुवा मिला और न दुरगा । जब सभी हताश हो गये और दादी को चक्कर पर चक्कर आने लगे तो सब घबरा गये । चाँदा और सतूड़ी एक कोने में विचार मे डूबी हुई बैठी थीं ।

दादी की हालत धीरे-धीरे खराब होती जा रही थी, एक विक्षिप्तता का प्रभाव उस पर हो रहा था ।

"सतूड़ी, तुझे एक बात-बताऊँ ।" चाँदा ने गंभीरता से एकांत में कहा ।

"बता ।"

"अब दादी जिंदा नही रहेगी, वह मर जायेगी ।"

'क्यों ?"

"दुरगा मे उसके प्राण थे ?"

"पर दुरगा मरी थोड़े ही है । अरी ! तू दादी की वह कहानी भूल गयी -- गुफा का तोता ! गुफा के तोते में नीले राक्षस के प्राण थे और गुफा में कोई जा नहीं सकता था ! इसी तरह दुरगा जिंदा हो, कहीं भी हो, क्या फर्क पड़ता है !

चाँदा ने सतूड़ी की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा । फिर कहा, "पर वह कहाँ है, इसका तो पता चले !"

"चल जायेगा ।"

"और बटुवा ?" चाँदा ने सतूड़ी का हाथ अपने हाथ में लिया और कोमल स्वर में कहा, "जानती हो, बटुवे में दादी के हनुमानजी व पाँच रुपये थे ।"

सतूड़ी ने कोई उत्तर नहीं दिया ।"

चाँदा ने उदास होकर आह छोड़ी । फिर कहा, "दादी अब मरेगी । वह इन दो चीजों के बिना जिंदा नही रह सकती ।"

तभी पनिया जाट दुरगा की लाश लिये आ गया। उसने बताया, "सरोवर की पाल के नीचे यह दुरगा मरी पड़ी थी। लग रहा है कि कुत्तों ने इसे मार डाला है।"

दुरगा की लाश देखकर सब आतंकित हो गये। एक सन्नाटा पसर गया। सभी उपस्थिति मे जड़ता आ गयी। उनकी निगाहो मे आशंका-सने प्रश्न निकल-निकल दादी से चिपकने लगे।

दादी ने एक बार आँखें खोली।

दुरगा की लाश उसके पास पड़ी थी। उसे देखते ही वह थर-थर घूमने लगी। उसकी आँखो से झर-झर आँसू बहने लगे।

थकी-थकी-सी वह गहरे अवसाद से दुरगा को देखती रही। वह कुछ बोलना चाहती थी पर हृदयावेग या किसी अन्य कारण से वह बोल नही सकी। पर उसके फड़कते होंठो से लग रहा था कि वह दुरगा… दुरगा… कहना चाहती है। शायद उसकी वाणी किसी आघात के कारण निष्प्राण हो गयी हो।

अथाह पीड़ा और असह्य वेदना से दादी तड़प रही थी।

सारे लोग निसहाय से मूक दर्शक की तरह खड़े थे।

चाँदा से नही रहा गया। वह लपकती हुई आयी और दादी से लिपटती हुई रो-रोकर बोली, "दादी…हमारी दुरगा मर गयी…हमारी दुरगा मर गयी। …तेरा बटुवा भी खो गया।"

और दादी के हाथ पाँव ढीले हुए और उसकी आँखें उलट गयी।

'दादी मर गयी'

यह वाक्य हवा मे उछाल कर चद ही पलों में सारे गाँव मे फैल गया। गाँव मे दुख की छाया फैल गयी।

काफी भीड़ इकट्ठी होने लगी। सभी जाति-धर्मों के लोग आने लगे।

अर्थी क्या निकली उसके साथ लगभग पूरा गाँव था।

चाँदा को याद है कि छोटी जाति के लोग भी आये थे!

चाहे अंधविश्वास हो या कार्य-कारण का सम्बन्ध पर यह सर्वमान्य हो गया कि दादी के प्राण बिल्ली मे थे!

दादी का अभाव लोगो को बड़ा खला। गाँववालों के बीच एक

खालीपन-सा आ गया। वे अपने को हारी-बीमारी में असहाय समझने लगे।

और चाँदा के चारों ओर एकांत का काँटेदार सन्नाटा पसर गया। उसे हर घड़ी दादी का अभाव खलता था।

यह अकेलापन और भी दुर्वह तब हुआ जब सतूड़ी की शादी हो गयी और उसके एक साल के बाद मुकलावा (गौना) होकर वह गांव से चाँदा से पहले चली गयी।

चाँदा का मुकलावा नहीं हुआ था। उसकी सास का कहना था कि जब तक वह १५ साल की नहीं होवेगी तब तक 'मुकलावा' नहीं होगा। ...और सतूड़ी वैसे उससे दो साल बड़ी भी थी। सतूड़ी ससुराल से लौटी तो उसकी आकृति की कांति बदली हुई थी। उसका शरीर भरा-भरा और आकर्षक लग रहा था।

चाँदा ने उसे पूछा, "तू तो ज्यादा फूठरी (सुन्दर) लगने लगी।"

"हां।"

"कैसे ?"

"मैं तो इतना ही जानती हूँ।"

"क्या जानती हो ?"

"कि विवाह मंडप की अग्नि का धुआं जैसे ही लड़की के शरीर को छूता है, उसमें बदलाव आ जाता है।...चाँदा! यह मुझे मेरी माँ ने बताया था।"

"और तेरा पति...!"

"सीधी गाय के समान है।" सतूड़ी ने आदर-भाव से बताया, "अब तेरा मुकलावा कब होगा ?"

"जल्दी ही।"

चाँदा को लगा कि ससुराल में जाकर छोरी सुधरती-संवरती है!

और उसका मुकलावा जैसे ही वह १५ वर्ष की हुई, हो गया।

सास अपनी जबान की पक्की निकली।

चाँदा का पति नारायण स्वयं लेने आया था। नारायण जवान लगने लगा था। थोड़ी-थोड़ी मूँछें फूटने लगी थी।

वह बंगाली कट बाल रखता था। उसने धोती, कुर्ता और काली टोपी पहन रखी थी।

उसके हाथों में सोने के दो कड़े थे।

ससुराल में जँवाई सा का खूब स्वागत हुआ। रात को उसे गाँव की छोरियों ने घेर लिया। तरह-तरह के सवाल करने लगीं। बेचारा नारायण हक्का-बक्का रह गया। वह एक का जवाब देता तो दस पहेलियाँ एक साथ गूंजती !

सतूड़ी नारायण का हाथ पकड़ कर बोली, बहनोई जी ! यदि आप मेरी पहेली का अर्थ बतला दो तो मैं आपको जो माँगे दूंगी।"

"आप नही दोगी ?"

"दूंगी।"

"सुनिए, झूठी बात चोखी लगती नही।"

सतूड़ी ने पहेली, बतायी—

डूंगर मारयौ गिरगलो जी ढोला,
लाया गाडी घाल ओ राज
खाया बामण-बाणिया जी ढोला
पायौ जुग ससार ओ राज······

बहनोई जी ! इस पहेली का अर्थ बताओ।

नारायण ने थोड़ी देर तक सोचा।

कई छोरियाँ एक साथ बोल पड़ी, "बताओ, बहनोई जी बताओ।"

नारायण ने कुछ देर फिर सोचा।

लड़कियों ने उसका घेराव कर रखा था। सतूड़ी नारायण को स्पर्श करके बोली, "क्या हुआ बहनोई जी, इतनी सरल पहेली मे ही आप घबरा गये। इस तरह आप हमारा क्या लेंगे !"

नारायण ने सोचकर कहा, "नारियल।"

सतूड़ी घबरा गयी।

नारायण ने कनखी मारकर कहा, "साली जी ! अपना कौल याद रखना।

सतूड़ी अनजाने भय से घिर गयी।

उससे कोई उत्तर नही दिया गया।

तभी गगूड़ी ने सतूड़ी को हटा कर कहा, "बहनोई जी ! अपने को तीसमारखां समझ रहे हैं तो मेरी पहेली का उत्तर दीजिए—

आटै सरीखी गिलगिली
खरबूजै सरीखी मीठी ओ राज
इण आडी को अर्थ बतावो
थांनै सवा लाख की बीटी ओ राज···

इस बार नारायण अर्थ नही बता सका।

गगूड़ी ने फिर कहा, "सवालाख की अँगूठी का सवाल है बहनोई जी ?"

नारायण ने अपने दिमाग के कई घोड़े दौड़ाए पर वह पहेली का अर्थ नही बता सका तो गंगली ने झट से कहा, "हमारा और आपका हिसाब बराबर हुआ।"

सतूड़ी की जान मे जान आयी। उसने कहा, "हाँ बहनोई जी, हमारा हिसाब किताब बराबर हुआ। अर्थ है, किसमिस। दाख।

जेठकी ने आगे आकर पूछा, "बताओ बहनोई जी, मेरी पहेली का अर्थ ?

माँ मोडी बेटी झीतरी जी
दोनों रै अेक ई भरतार
इण आडी रो अरथ बतावो
नीतर कँवा थोला गँवार ओ राज······

पहेली बहुत ही कठिन थी। नारायण सोचने लगा। उसने बार-बार पहेली को दोहराया और अर्थ सोचने लगा।

लड़कियाँ खिलखिलाकर हँसने लगीं। एक ने कहा, "जीजाजी इसका अर्थ नही बतला सकते। माँ-बेटी का पति एक हो, यह कैसे संभव हो सकता है।"

अचानक नारायण बोला, "कैरी और गुठली।

छोरियाँ सुन्न !

सतूड़ी ने नारायण की ओर देखकर कहा, "बहनोई जी पढ़े-लिखे लग

रहे है ! यह पहेली बड़ी ही कठिन थी।"

नारायण ने झट से कहा, "कठिन को सरल करना हम लोगों के बाएँ हाथ का खेल है।"

इस तरह मोद मनाकर नारायण अपने साथ बहू को ले आया। चाँदा अपने साथ दादी का सुई डोरेवाला बटुआ भी ले आयी।

□
□

चाँदा पन्द्रह बरस की थी। उसको पहुँचाने के लिए साथ मे गाँव की नाइन आयी थी। नाइन दो दिन बीकानेर रही।

नारायण अपनी नानी के घर पर ही रहता था। चाँदा ने भी महसूस किया कि उसकी नानी सास बहुत ही धीर-स्वभाव की लुगाई है। उसका बहुत ही लाड-कोड करती है।

नानी सास सरसुती और सास-जठानी का उमे घूंघट निकालना पड़ता था।

सास ने उसे आते ही कह दिया था, "बीनणी ! इस घर की मान-मर्यादा बड़ी ऊँची है। डागा रामलालजी का यह घर है। इस घर में हम उनकी दया पर रह रहे हैं। दया पर रहना कितना दोरा (कठिन) होता है। पर क्या करूँ···तेरा ससुर तो तेरे धणी (पति) को डेढ साल का छोड कर चल बसा था। उस समय घर की हालत ठीक नही थी। अन्न का दाँत से बैर का आभास होने लगा था। मैं सोचने लगी कि नारायण को किस तरह पालकर बड़ा करूँगी ? आजकल कौन किसका होता है पर मेरी माँ ने मुझे अपनी छाती से लगाकर सांत्वना दी कि इस भूमि पर सब भाई-बंधु बदल सकते हैं पर माँ नही बदल सकती और जिसकी माँ बदल जाती है तब समझना चाहिए कि वह बडा ही अभागा है। उस जैसा अभागा भूमि पर नही होता ?······ विधवा बेटी छाती पर रहे यह माँ-बाप के लिए बड़ा ही कष्ट साध्य होता है पर माँ का सहारा और बाप की दया मुझ पर सदा रही। भाई समय के साथ विधवा बहिन से बदल सकते हैं पर माँ नही। वह धरा होती है न ? समस्त संसार का भार वहन करने वाली वसुन्धरा।" -

जमनी भाव विह्वल हो गयी। उसकी आँखें तरल हो गयी। उसने नत मस्तक घूँघट में लिपटी बहू की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर कहा, "फिर भी पवित्र रिश्ते बिना स्वार्थ के नही निभते! माँ का अपरिमीम स्नेह के बाद भी मुझे बार-बार लगता था कि मुझे कुछ करना चाहिए। इसलिए मैं ठीक सुबह चार बजे उठ जाती थी। ठंड की मौसम मे पाँच बजे उठकर मैं सबसे पहले घर-आँगन मे झाड़ू-बुहारी लगाती थी। पानी की मटकियाँ कुँडी से पानी खीच-खीच कर भरती थी। इसके बाद मैं 'बाडे' चली जाती थी। बाड़ा घर से नजदीक ही था।

ठंड के मौसम में कलेजा तक काँपता रहता था। मैं एक मोटी चादर ओढ़े हुए बाड़े मे जाकर गायों को घास डालती थी। गोबर इकट्ठा करती थी। झाड़ू बुहारती थी।

वहाँ से आकर स्नान करती थी। यदि ठंड का मौसम होता तो चूल्हा जला लेती थी और गर्म पानी चढ़ा देती थी।

स्नान करके मैं मंदिर में बैठ कर 'सेवा' करती थी। श्रीनाथजी प्रभु की चित्र-सेवा। फिर श्रीकृष्ण शरण ममः का जप करती थी।

अनपढ़ होने के कारण पढ़-लिख नहीं सकती पर कई पाठ मैंने कंठस्थ कर लिये थे। हर तीसरे दिन मैं और माँ दोनों चार बजे उठ कर गेहूँ-बाजरा पीसती थी। दोनों जनियाँ चक्की ने सात सेर गेहूँ पीस लेती थीं।

भोजन माँ बनाती थी और बर्तन मैं माँजती थी। घर में पाँच प्राणी थे। मैं, माँ, काका (पिता) और दो छोटे, तीन बड़े भाई परदेश कमाने चले गये थे—कलकत्ता। एक शादीशुदा है, उसकी बहू भी यहीं रहती थी। कभी यहाँ और कभी पीहर। भोली है बहू वह।

जब नारायण पढ़-लिखकर होशियार हो गया तो उसे मेरी स्थिति का ज्ञान हुआ। उसे लगा कि मेरी माँ कठोर मेहनत करती है, एक बाँदी से भी दुखद जीवन जीती है तो वह कमाने की चेष्टा करने लगा। आज नारायण एक 'दानखाने' में 'खाता-वही' का काम सीख रहा है। हाथ-खर्च के दो रुपये मिल रहे हैं।

वे दो रुपये वह लाकर नानी की हथेली पर रख देता है। एक पाई

भी खर्च नही करता। कपड़े होली-दीवाली पर सिलवाता है। दीवाली के पहले 'धन्नतेरस' (तेरहवी) को नये कपड़े पहन कर लक्ष्मीनाथजी के मंदिर जाता है और होली के बाद 'रामा-श्यामा' के दिन नये कपड़े पहनता है। 'बडा होनहार और समझदार लडका है।'' बीनणी! हमे अपने दुख के दिन बिताने हैं इसलिए धीरज और शांति से रहना। बस, नानी, सासजी जो कहे, वही करना। ज्यादा इधर-उधर डोलना नही। किसी भी बाहरी लुगाई और मर्द से चप्पर-चप्पर बोलना नही। बस काम से काम रखना! रात को नानी सास के पाँव दबा कर मालिये (कमरे) मे जाना। जाओ तो इस बात का ध्यान रखना कि पायल बाजे नही। दीया वेसी मत जलाना। कही तेरे नाना ससुर देख लेंगे और कुछ कह देंगे तो मैं तो लाज मे डूब मरूँगी। पराये चूल्हे पर खिचड़ी पकाना बड़ा कठिन होता है। मामी सास की कद्र करना। झांझर के (तड़के सुबह) सबसे पहले उठकर घर-आँगन को साफ करके नहा लेना। बीनणी! मैं तेरा बहुत ही लाड-कोड करना चाहती हूँ पर भगवान ने अभी तक हम पर वह किरपा नही की है।

चाँदा ने कोई उत्तर नही दिया। वह केवल सिर हिलाकर स्वीकृति देती रही या फिर 'डिचकारी' देकर अस्वीकृति देती रही। उसने सास का लम्बा घूँघट निकाल रखा था।

चाँदा को याद है—अपनी पहली रात। टीके की रात (सुहागरात)।

टीके की रात वह पहली बार अपने पति के पास गयी। ठंड का मौसम था। कड़ाके की ठड पड रही थी। उस पर हड्डियाँ बिंधने वाली डाँफर और हील। ठडी हवाएँ।

वह मालिये मे गयी। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। वह नानी सास के पाँव दबा रही थी। नानी सास सो गयी थी। जोर-जोर के खर्राटे भर रही थी। अब वह जाएँ तो कैसे?

जब नानी सास की नींद नही टूटी और उसे भी झपकियाँ आने लगी तो सास जमनी ने आकर धीरे-से कहा, ''बीनणी, जाओ पिछले मालिये मे मे सो जाओ।''

पति से मिलने की तीव्र अभिलाषा और उत्कंठा जो दिन भर उसके भीतर हलचल मचा रही थी, वह खत्म हो गयी! एक थकान और ऊब

ने उसे घेर लिया। उम्र भी तो कच्ची थी। केवल पन्द्रह साल। वैसे उसने अपनी माम से आज ही सुना—तिरिया तेरह और मरद अठारह। लड़की तेरह साल की तिरिया हो जाती है और लड़का अठारह साल का मर्द।

उसने तब सोचा था कि वह तो औरत हो गयी पर उसका पति तो अभी सत्रह साल का है? पक्का मर्द नहीं हुआ?

एक विचित्र-सी भावना उसमें जागी थी।

माम के कहने पर वह पिछले मालिये की सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। पायल बोल गयी—छम-छम।

वह रुक गयी। मन ही मन बोल उठी—हाय राम कितनी निर्लज्ज है यह पायल।

और वह आहिस्ता-आहिस्ता पाँव उठाती हुई मालिये के आगे पहुँची। धीरे से किवाड़ खोले। मालिये में घुप अँधेरा था।

उसने खिड़की खोली।

चाँदनी झपट कर भीतर आयी। उजास फैल गया साथ ही हवा का ठंडा झोंका भी उससे चिपट गया। उसके भीतर झुरझुरी छूट गयी। उसने इसी बीच दियासलाई ढूँढ ली। लपक कर खिड़की बंद की।

दियासलाई से दीया जलाया।

नारायण सोया हुआ था। रजाई में लिपटा। छींटदार रजाई थी, नयी। उसने अपने पति को देखा। देखा तो बस देखती रही। गहरे अपनेपन से। भावप्रवणता से।

उसने मालिये को देखा।

मालिया छोटा था पर उसमें कई छोटे-छोटे आले थे। दो आलों पर किवाड़ भी चढ़े हुए थे। फूलों की छत थी। फूल रँगे हुए थे। चारों कोनों में छोटे-छोटे नीले और हरे रंग के झाड़-फानूस लटक रहे थे।

एक खुले आले में एक तश्तरी रखी हुई थी। उसमें मिठाई पड़ी थी।

उसने सबसे पहले अपनी पायल को खोला। फिर सोचने लगी कि वह अपने पति को जगाये या नहीं?

उसे सतूड़ी की बातें याद हो आयीं। उन उन्मादभरी बातों और पहली रात में उसने क्या-क्या किया, ये सब याद करके वह रोमांचित

गयी । सतूडी ने यह भी बताया था कि उसका पति सब बातें जानता था । इतना चालाक था कि मुझे देखकर झूठ ही खर्राटे लेने लगा ।···पर चाँदा ने महसूस किया कि उसका पति वैसा नहीं है । सीधा-सादा है । सचमुच सो गया है । कोई चालाकी और चतुराई नहीं ।

फिर ?

उसके भीतर उत्सुकता के साथ-साथ पुलक-भरी आर्द्रता भी जन्म गयी ।

चाँदा ने धीरे-से रजाई हटायी और अपना बर्फ-सा ठंडा हाथ नारायण के हाथ पर रख दिया । उसने अपना घूँघट तुरन्त लम्बा कर लिया ।

ठंडे हाथ के स्पर्श से चौंक पड़ा नारायण । अचकचा कर जाग गया ।

सामने अपनी बहू को देखकर वह कुछ पल विमूढ़ रहा । कदाचित वह सोच रहा हो कि मैं सपना देख रहा हूँ या हकीकत है ?···उसने कुछ ही क्षणों में यह सोच लिया कि यह सच्चाई है । उसके सामने उसकी बहू बैठी है ।

नारायण ने अभी तक चाँदा की एक झलक भी नहीं देखी थी । दिन में वह 'दानखाने' काम सीखने चला गया था । शाम को आया तो वह बाहर चला गया—भोजन करके ।

उसने धीरे से कहा, "बहुत देर कर दी ।"

वह चुप रही—सिर झुकाए ।

"कितना सन्नाटा छा गया है । इत्ती देर नीचे क्या कर रही थी ?"

उसने पति के पाँवों पर हाथ रखे ।

नारायण ने उसके हाथों को हटाते हुए कहा, "हाथ क्या बर्फ के टुकड़े हैं । क्या कपड़े धो रही थी !

उसने 'ना' में सिर हिला दिया !

सहसा नारायण को कुछ स्मरण हो उठा । उसने तकिये के नीचे से पाँच चाँदी के विक्टोरिया रानी की छाप वाले रुपये निकालकर चाँदा के हाथ पर रख दिये, "माँ ने कहा था कि बींनणी को मुँह-दिखायी के दे देना । ये लो और अपना मुँह मुझे दिखा दो ।"

चाँदा तटस्थ रही ।

न उसने मुँह दिखाया और न उसने अपने घूँघट को लम्बा ही किया।

नारायण बैठ गया। उसने घूँघट हटा दिया। दीये के पीतलिया उजास में उसने चाँदा के सौन्दर्याभिभूत मुख को देखा। देखते-देखते हठात् उसके मुख से निकला, "तू तो बड़ी सुन्दर है। चाँद की तरह गोरी। क्या इसलिए तेरा नाम चाँदा रखा है।"

"हाँ, मेरी दादी ने रखा था।"

फिर वे दोनों आपस में लम्बी बातचीत करते रहे। यकायक चाँदा को याद आया कि सास ने कहा था—*दीया अधिक देर मत जलाना।*

"ओह! सारा तेल जल गया। सासूजी भी क्या कहेंगी? मुझे तो बड़ी शर्म आयेगी। दीया बुझा दूँ।"

"बुझा दे और सो जा।" नारायण ने कहा।

चाँदा ने फूँक मारकर दीया बुझा दिया।

☐
☐

यदि किसी लोहे को पारस का स्पर्श करा दिया जाय तो वह सोना हो जाता है, ठीक पुरुष के प्रगाढ़ स्पर्श और आलिंगन से प्रकृति का कण-कण विकसित हो जाता है। प्रकृति अनुपम लगने लगी। यही शाश्वत नियम है कि प्रकृति-पुरुष का पारस्परिक मिलन ही जीवन की सम्पूर्णता है। अनिवार्यता है।

प्रकृति चाँदा

पुरुष = नारायण

चाँदा का रूप-यौवन पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह कांतिमय हो गया! अंग-प्रत्यंग खिल उठे।

इस बीच वह दो बार अपने मैके भी जा आयी। एक बार आने के कुछ दिन बाद और दूसरी बार सावन में। पहले सावन में सास, बहू साथ नहीं रहती हैं, ऐसा अंधविश्वास है। नारायण उसे प्रगाढ़ प्रेम करता था पर चाँदा को एकांत के क्षणों में एक बात का सदा अहसास होता रहता था वह बन्दिनी है। यहाँ गाँव की तरह स्वतंत्रता और मस्तियाँ नहीं हैं! से शाम तक उसे गूँगी बनकर घूँघट निकालकर जीना पड़ता है!

पर काम करना पड़ता है।

और जब एक दिन चाँदा को यह मालूम पड़ा कि नारायण कलकत्ता जायेगा तब चाँदा को बड़ा ही आघात लगा।

इतना लम्बा सफर? दुर्गम यात्रा।

बीकानेर से अजमेर · अजमेर से दिल्ली और कलकत्ता। उसका मन व्यथा से भर आया। वह बावली-सी हो गयी।

आँगन में नानी सास और उसकी सास आपस में बातचीत कर रही थीं। मामी सासुएँ भीतर बैठी थी।

दोनों बड़ी गंभीर थी।

उनकी मुद्राएँ चिंताओं में डूबी हुई थीं।

उसकी सास जमनी ने कहा, "माँ! बाणिया का बेटा तो कमाता ही चोखा लगता है। इस उजाड़ धोरोंवाली धरती पर रहकर तो पेट भरना भी कठिन है। पशु पालन, लादे बेचना, भगवान के भरोसे खेती करना, इनसे तो दो वक्त केवल पेट ही भरा जा सकता है। परदेश में काम करने के कई रास्ते हैं। और माँ, तू तो जानती है कि बाणिये के भाग्य पत्ते के नीचे होते हैं, पत्ता तो हवा के हलके झोके से उड़ सकता है।"

"हाँ बेटी, उसके मामा 'उत्तम' का पत्र भी आया है। उसने भी लिखा है कि नारायण को कलकत्ता भेज दो। वहाँ काम बहुत है।"

"नारायण जायेगा या नहीं?"

"जायेगा क्यों नहीं?" नानी ने हुमक कर कहा, "क्या सारा जीवन ननिहाल की दया पर पड़ा रहेगा? सुन बेटी, मैं हूँ जब तक तो तुझे कोई भी 'रे से तू' नहीं कह सकता है। बाद में भाई और भौजाइयाँ तुम दोनों को अपने घर में रखे या न रखे। इस वास्ते मेरी तो इच्छा है कि जब तक मैं जिंदा हूँ तब तक तू अपना नया घर बसा ले और गृहस्थी को अच्छी तरह जमा ले।"

उसी समय नारायण आ गया।

नारायण ने घुसते ही मुस्करा कर कहा, "नानीजी! आज क्या खुसर-पुसर हो रही है।"

"तेरे मामा की चिट्ठी आयी है।"

उसने उत्साह से कहा, "क्या लिखा है ?"

"लिखा है कि भाणिये (भांजे) को कलकत्ता भेज दो। इस शहर में व्यापार करने के कई साधन हैं। भाग्य साथ दे तो आदमी दो-चार साल में लखपति बन सकता है।"

नारायण आत्मविभोर-सा बोला, "सच, मामाजी ने यह लिखा है।"

"हाँ बेटा।" माँ बीच में बोली, "नानीजी झूठ थोड़े ही बोल रही हैं। तेरे मामा की चिट्ठी आयी है। पता नहीं, तू जाना पसंद करेगा या नहीं।"

नारायण की आँखें चमक उठीं। वह पूरे उत्साह से बोला, "मैं जरूर जाऊँगा माँ ! मैं तो हररोज श्रीकृष्ण जी से यही प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे ऐसी जगह भेज दें जहाँ मैं कुछ कर सकूँ।"

"तो चिट्ठी में क्या जवाब लिखूँ ?"

"लिख दीजिए कि नारायण कलकत्ता जल्दी ही आयेगा ! यहाँ से बैलगाड़ी या ऊँट पर अजमेर जाना पड़ेगा। अजमेर से रेलगाड़ी की यात्रा। अजमेर जाने के लिए साथ का होना बहुत जरूरी है। यदि मुझे जल्दी ही 'संग' मिल जायेगा तो मैं उसी से चला जाऊँगा।"

"तू ठीक समझे तो मैं एक चिट्ठी और लिख दूँ।" माँ [illegible] सुझाव-सा रखा।

"नहीं माँ नहीं, चिट्ठी-पत्री भेजने और उसका वापस [illegible] में महीना-दो-महीना लग जायेगा। माँ ! तुझे नहीं मालूम [illegible] समाचार का कितनी बेचैनी से इन्तजार कर रहा था। [illegible] रहना ही नहीं चाहता। यहाँ क्या पड़ा है ? बस दोनों [illegible] लो। माँ ! केवल पेट तो कुत्ता भी भरता है—[illegible] है। मैं तो बाणिया का बेटा हूँ [illegible] जाति को ही लजाऊँगा।"

माँ ने पलभर के लिए [illegible] माँ को। उसकी आँखें [illegible] भाग्य और आस्था है !

नारायण ने [illegible]

कि चिट्ठी-पत्री भी अजमेर होकर आती है। वहीं से कई नगरों में चार घोड़ों की बग्गियों व ऊँटों पर डाक आती जाती है। मुझे रमणलाल जी ने बताया है कि इस तरह डाक की व्यवस्था बहुत ही धीमी होती है। आप तो जानती हैं कि व्यापारी को इतना धीमापन कैसे सहन हो सकता है? उन्होंने अनेक चीजों के भावों को जल्दी से जल्दी पहुँचाने के लिए एक नया रास्ता ढूढ़ निकाला। उसको 'चिलका डाक' कहते हैं। चिलका (रिफ्लेक्शन) डाक का मतलब यह है कि जैसे ही अजमेर डाक प्राप्त होती है, वैसे ही वहाँ से आदमी एक निश्चित स्थान पर खड़ा होकर चिलका डालता है। चिलका कैसे और कितनी बार डाला जायेगा—क्या बताना है - इस पर निर्भर करता है! यह सकेत की भाषा है। जैसे तीन बार चिलका डालने का मतलब है कि तीन गुना भाव बढे…यह चिलका डाक एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा…लम्बी दूरियों को तुरन्त नाप लेती है।

"आदमी का दिमाग भी कितना चमत्कारी है।" नानी ने कहा, "फिर बेटा सुन, तू जल्दी से जल्दी किसी संग को ढूँढ ले। पहले मदनमोहन जी के मदिर-जरूर दर्शन कर आ।"

"दर्शन ही नही, यदि मैंने अपना धंधा जमा लिया तो मैं बीकानेर के सारे वैष्णव मदिरो मे पोशाक चढाऊँगा।"

बेटे की आस्थापूर्ण बात सुनकर जमनी की आँखें भर आयी। वह ईश्वर को नमस्कार करके बोली, "दीनानाथ! तेरी हर इच्छा को पूरा करेंगे। सब कुछ करनेवाला तो वही तीन त्रिलोकी का नाथ है। वही तेरा बेडा पार लगायेगा।"

नानी ने भी उसे शुभकामनाएँ दीं!

नारायण ने फिर कहा, "मैं उत्तम मामाजी का अहसान जीवन मे कभी नही भूलूंगा।… नानी जी! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि भगवान ने चाहा तो मैं जरूर कुछ करके दिखाऊँगा।"

"जो मेहनत करेगा भगवान उसे अवश्य ही फल देगा।" नानी ने उसे आशीर्वाद दिया।

□

वह काल-क्षण को विस्मृत करके नारायण को अपने आप में भींच कर चाँदा ने कहा, "नहीं-नहीं, आप परदेश मत जाइए। मेरा मन आपके बिना नहीं लगेगा। कितनी लम्बी यात्रा, ··कठिन मार्ग,·· बाधाएँ,·· मार्ग की विपदाएँ आने दीजिए ऐसी कमाई को। हम सब मोंठ-बाजरा खाकर भी चैन से जी लेंगे।"

चाँदा अन्त में विह्वल हो गयी। उसकी आँखें अश्रुओं से भर आयीं।

नारायण उसकी अधनंगी पीठ पर हाथ फेरकर बोला, "सुन, मोंठ-बाजरी खाकर एक वाणिया का बेटा सुख से नहीं जी सकता। वाणिये का बेटा तो बिणज (व्यापार) करके हवेली न बनाये तब तक वह अपने समाज में इज्जत नहीं पा सकता।···फिर जब रुपये कमा लेंगे तब अपनी हवेली होगी, रथ होगा·· गहने होंगे, नौकर-चाकर होंगे। बग्गी-इक्के होंगे। यह ठाटबाट होने के बाद ही हमारी सही इज्जत होगी। हमारे समाज में न गुण की कद्र है और न कला की, कद्र है तो बस एक ही चीज की—धन की। जिस वाणिया के पास धन नहीं, वह गली के गडक (कुत्ते) की तरह पड़ा रहता है।"

"मैं आपकी बात को समझती हूँ।" चाँदा ने गहरे अपनेपन से कहा, "पर जोबन गुमायकर घर मांडणा (बसना) कहाँ तक बुद्धिसंगत है।"

नारायण ने उसके अश्रुभरे चेहरे को दीये की लौ में देखा। अपार करुणा थी उसके मुख पर। नयन याचना कर रहे थे।

उसका हाथ अपने हाथ में लेकर नारायण ने कहा, "तुम्हारी बात में काफी दम है। जोबन खोकर घर बसाने में कोई तुक नहीं है पर जब भूख, अभाव, तंगी और रहने को मकान न हो तो यह जीवन जहरीला बन जाता है। इसे सहना भी दूभर होता है। अपने रोम-रोम को स्वयं को पीड़ा देने लगते हैं। ··तुझे पता नहीं, गरीबी कितनी दुखदायी होती है।"

आखिर चाँदा थी तो वाणिया की बेटी! पैसे के महत्त्व को समझती थी। बोली, "ठीक है फिर?"

नारायण ने कहा, "अभी सारी जवानी पड़ी है ! मौज-मस्ती के दिन भी बहुत हैं । कहावत है कि रूपली पल्ले तो रोही (जंगल) में चल्ले ! -समझती हो न, पास में यदि पैसा हो तो जंगल में मंगल हो सकता है ।"

"ठीक है ।"

सहसा उसने गंभीर मौन धारण कर लिया । हठात् उसे-सतूडी याद हो आयी । सतूड़ी के साथ उसके दाम्पत्य-प्रेम की अनेक खट्टी-मीठी बातें । पल भर के लिए वह अपने मौजूदा वजूद से कट गयी ।

उसका मन-पखेरू तीव्रता से उड़ कर सतूड़ी के पास पहुंच गया ।

"अरी चाँदा, तुम्हें क्या बताऊँ, "मुझे इतना चाहता है कि बस बता नहीं सकती। एक पल भी नजरों से दूर करना नहीं चाहता, बस मौका लगते ही ''। शर्म आती है मुझे !'''कह रहा था—मेरे बागों की चिड़िया '''मैं अब गाँव छोड़ कर नहीं जाऊँगा । मुझे टके-पैसे नहीं चाहिए।"

"और उसका पति भरे जोबन में उसे छोड़कर जा रहा है—यह कैसी विडम्बना है !"

नारायण ने अपने आप में डूबी चाँदा को पकड़कर झटका दिया, "क्या सोचने लगी ।"

"हैंऽऽ ।" वह चौंक पड़ी ।

"कहाँ चली गयी थी ?"

'वह उसके सीने में धँसती हुई बोली," कहीं चली गयी थी । दूर '' अपने गाँव अपनी सहेली के पास । आपको बताऊँ —मेरी सहेली सतूडी कह रही थी कि उसका पति किसी भी कीमत में उसे छोड़ कर कहीं नहीं जाता ।"

"वह जाति की कौन है !"

"बामण ।"

"बामण-वाणिये में यही तो फर्क है ।" नारायण ने उसे समझाया, "बामण एक वक्त की रोटी खाकर संतोष कर लेता है। एक गमछा पहनकर और एक गमछा कंधे पर रखकर 'जीमणवार' जीम कर अपने को धरती का सबसे सुखी आदमी समझ लेता है और बाणिया लाखों रुपये कमा कर भी संतोष से नहीं बैठता ।'''वह इसी धुन में लगा रहता है कि

धन कमाऊँ···पैसा कमाऊँ···और कमाता ही जाऊँ···

चाँदा की आँखें आँसुओं में डबडबायीं। वह व्यंग से बोली, "कमाते-कमाते फिर मर जाऊँ। क्यों यही कहना चाहते हैं? यदि यही बाणिये के जीवन का ध्येय और धर्म है तो फिर क्या जरूरत है— शादी-ब्याह की।"

नारायण ने अत्यन्त ही बोदेपन से कहा, "अरी भागवान! तू सैणी-सयानी होकर पागल की तरह बात करती है। शादी-ब्याह तो वंश चलाने के लिए करते हैं। यदि कोई पुरुष शादी नहीं करेगा तो उसकी वंश-बेलि सूख नहीं जायेगी?"···अरी। जरा समझा कर। मैं परदेश जाकर खूब धन कमाऊँगा।···! तुझे सोने-चाँदी से लाद दूँगा।"

"गिरिराजधारी आपकी मदद करें।"

"अभी तूने धन का मजा देखा नहीं है। जब देखोगी तो समझोगी।"

और नारायण ने चांदा को अपने पास खींच लिया।

चांदा माँस का लोथड़ा बन गयी।

□

□

मन कई बार युद्ध भूमि बन जाता है। तरह-तरह के विचार छोटे-छोटे युद्ध करते हैं और मन को क्षत-विक्षत कर देते हैं।

पिछले तीन दिनों से चाँदा के मन की यही स्थिति थी। प्रचंड युद्ध हो रहे थे—उसके मन में।

नारायण कलकत्ता जानेवाला था। प्रवास जाने की विकट यात्रा को याद करके चाँदा अपने-आपको विषाद के गहरे अतलांत में डुबा रही थी।

हालाँकि उसके पति ने उससे कौल किया था—बार-बार किया था कि वह जरूर इसी बात का यत्न करेगा कि वह जल्दी-से-जल्दी लौटे?··· उसके आश्वासनों के उपरान्त भी उसे कहीं ठहराव नहीं मिल रहा था। शंकाओं के प्रखर-प्रवाह में वह बही जा रही थी।

क्योंकि वह कल तो चला ही जायेगा। दूर···बहुत दूर!

"यह आज आखिरी रात है।" चांदा ने सोचा। तब वह [illegible] पास की 'गाल' (एक तरह का कमरा) में बैठी-बैठी सास के टीका लगा रही थी।

नारायण बाहर गया हुआ था।

उसकी सास और मामी सास रसोईघर में थी। वे दोनों आटे के टिकले, शकरपारे, मीठे और नमकीन और सादी दाल की पूड़ियाँ बना रही थी ताकि नारायण को रास्ते में खाने का कष्ट न हो ?

"बीनणी !" नानी सास ने पुकारा।

चाँदा ने सुई-डोरा एक ओर रखा। फिर लहँगे को तह किया। आहिस्ता से उठकर वह लम्बे घूँघट में नानी सास के पास जाकर खड़ी हो गयी।

"ले थोडो नाश्ता कर ले।"

चाँदा ने इशारे से मना कर दिया।

"क्यों ?" नानी सास चौंकी।

उसने पेट से हाथ लगाकर संकेत दिया कि उसे भूख नही है।

नानी सास थोड़ी-सी नाराज होती हुई बोली, "भूख नही है ?" हूँ ! मोट्यार (जवान) है, और भूख लगती नही ? कैसी मोट्यार है ?···ले थोड़ा-सा खा ले।"

चाँदा का मन खाने को जरा भी नही हो रहा था पर वह यह सोचकर थोड़ी-सी चीजें ले ली—कि उसे नानी सास उपदेश देती रहेगी। वैसे भी बात-बात मे नानी सास को उपदेश देने की आदत भी थी।

वह जो कुछ भी खा रही वह सब उसे बेस्वाद लग रहा था। वह बेचैनी से रात की प्रतीक्षा कर रही थी।

नारायण के रवाना होने के कारण गृह-कार्य भी बढ़ गया था।

सास जमनी ने उसे अपनेपन से कहा, "बीनणी ! तू मालिये में जाकर नारायण के कपडे लोहेवाली पीले सदूक में जमा दे। हाँ, सभी कुर्तों के बटन जरूर देख लेना। यदि टूटा हुआ हो तो नया बटन लगा देना। वह हरी नखी किनारी की धोती है न, एक जगह से फटी हुई है, उसको महीन टाँका लगा देना।"

चाँदा। मालिये मे आ गयी। वह सारे कपडो को देखने लगी।

वह बार-बार सोच रही थी कि उसका पति चला जायेगा···उसे भरी जवानी मे छोड़ कर···कैसे रात-दिन कटेंगे ?

उसे एक झटका-सा लगा जैसे थोड़ी देर पहले उसमें आत्म-मंथन हुआ हो। एक आवाज लहराती हुई आयी — अरी पगली, कटेगा कैसे नही ?··· आज मौ मे पचास स्त्रियाँ ऐसे ही तो जीती हैं।···परदेस री गोरड़ी झुर-झुर पींजर होय ''परदेशी की रूपसी नवयौवना तो उसकी मधुर-मिलन स्मृतियों मे ही सूखकर पिंजर हो जाती हैं।

चांदा को फिर झटका लगा कि जरा सोच कि कोई भी सयाना-समझदार आदमी अपनी जवान पत्नी को छोड़कर जायेगा ?— नही, नही, नहीं ···कोई जाना ही नही चाहेगा पर यह पेट की आग आदमी को कहाँ-कहाँ ले जाती है, किधर-किधर भटकाती है, यह कोई नही जानता ?···इस पृथ्वी पर भूख नही होती तो आदमी अपनी सुख-शांती को छोड़ता ही नही। इस पेट की लाय (आग) ने आदमी को कहाँ-कहाँ भटकने के लिए विवश कर दिया। तभी बूढ़े बडेरों ने कहा है कि इस पेट के आगे सभी हार जाते हैं।

उसने अपने को समझा लिया।

कब सूर्य ढला, कब सांझ दौड़ी और कब भैंस की काली खाल-सी रात आयी, उसे नही मालूम।

जब सास ने नीचे से पुकारा, "बीनणी नीचे आकर खाना खालो।"

तब उसका ध्यान भंग हुआ। उसने जल्दी-जल्दी कपड़ों को व्यवस्थित किया और नीचे आ गयी।

"पेटी में सारे कपड़े डाल दिये।"

"हूँ।"

"अब खालो।···नारायण आता ही होगा।

उसने कोई जवाब नही दिया।

चांदा सास की तरफ पीठ करके खाने बैठी। कौर गले से उतरा नही। घडी-घडी कौर फंस जाता था। आँखें गीली हो जाती थी। भीतर घुटन-सी उभर आती थी।

वह पति विछोह की मर्मान्तक वेदना मे दग्ध हो रही थी। जैसे-तैसे उसने कौर निगले और जल्दी-से हाथ धो दिये।

अमली चौक कर बोली, "अरी, बीनणी, खाना खा लिया, इता

जल्दी ?"

चाँदा ने कोई उत्तर नही दिया । वह थाली उठाकर साफ करने के लिए रख आयी ।

जमनी व्यग्य से बोली, "बीनणी ! इतना जी मत जला, तेरी अकेली का पति ही परदेश नही जा रहा है । कमाना तो पड़ेगा ही।"

चाँदा पूर्ववत काम मे लगी रही । उसने इधर-उधर बिखरे बर्तनों को उठा कर माँजने के लिए रखा ।

घर के बाहर बरसाती के एक कोने मे 'बेकलू' (टीवों की रेत) रखी हुई थी । उससे सूखे बर्तन माँजने पडते थे । तब बीकानेर मे पानी का बडा अभाव था ।

आठ-आठ और नौ-नौ सौ फीट गहरे कुंओं से बैलों द्वारा खीच कर पानी निकाला जाता था । ऊँटों पर घरो मे पखाल में पानी आता था । पखाल चमडे की होती थी या फिर पेशेवर लोग मिट्टी के बने घडों को कन्धों पर रखकर घरों तक पानी पहुँचाते थे ।

निम्नवर्ग की चेष्टा यही रहती थी कि पानी का ज्यादा से ज्यादा उपयोग किया जाए । जैसे स्नान लोहे की बनी 'परात' मे करते थे । परात का पानी किसी पुरानी मटकी मे डाल लिया करते थे । उससे घर मे लीपा-पोती कर ली जाती थी । प्रायः बर्तन माँजने का कार्य सूखा ही होता था । यानी बेकलू से ही माँज लिए जाते थे ।

चाँदा सारे बर्तन इक्ट्ठे करके माँजने लगी । उस कोने मे अँधेरा था । रसोई मे भी लालटेन जल रही थी । उसका हलका-हलका प्रकाश घर आँगन में फैला हुआ था ।

उसी समय नारायण आ गया ।

चाँदा को बर्तन माँजते देखकर वह एक पल रुका । फिर घर के भीतर घुस गया ।

"क्यों, नारायण, सब काम ठीक हो गया।"

"हाँ नानी जी, संग का साथ हो गया है । इक्कीस जने हैं । यहाँ से अजमेर और फिर रेलगाड़ी से कलकत्ता !"

"हमने भी तुम्हारे जाने की सारी तैयारियाँ कर दी हैं।" जमनी

ने कहा, "अब जल्दी से खाना खाले। थोड़ा बेसी आराम करले।"

नारायण भी अब जल्दी से जल्दी मालिये में जाना चाहता था। लम्बे सफ़र की चिन्ता और चाँदा की बेचैनी उसे एक चुभनशील अहसास दे रही थी। मन मे रह-रह कर एक पीड़ादायक सवाल उठ रहा था कि इस दुर्गम यात्रा का कोई विश्वास नही ? कब यह यात्री को निगल जाय, कोई नही जानता ! कही वह…।"

माँ जमनी ने थाली परोस दी थी। नारायण आँगन मे ही बैठ कर खाने लगा। इसी समय उसका नाना और दो छोटे मामा गोपाल और किसन आ गये।

नाना ने आते ही पूछा, "क्यों नारायण, सब तैयारियाँ हो गयीं न ? मैं सेठ रामलाल जी मोहता से मिल आया हूँ। उन्होंने मुझे भरोसा दिया है कि आप कोई चिन्ता न करें डागा जी, हम नारायण को अच्छी तरह से जायेंगे।"

नाना ने गोपाल की ओर देखकर कहा, 'गोपाल ! नारायण को पच्चीस रुपये विदाई के दे देना।"

"ठीक है।" गोपाल ने कहा।

"नारायण !" नाना ने गहरे अपनेपन से कहा, "कोई अपनी कलेजे की कोर को दूर करना नही चाहता, फिर मेरे तो 'तू' एक ही दोहिता है। पर लाडी, जब तक आदमी पैसा कमायेगा नही तब तक न तो आदमी को मान मिलता है और न सुख-शान्ति। इस उजाड़ मरुप्रदेश में न पीने को पानी है और न पेट भरने को दाने उगते हैं। रेत ही रेत। दस-दस कोस से पीने का पानी लाना पड़ता है। यदि कोई यात्री इन धोरों (टीबों) में भगवान के प्रकोप से खो जाय तो प्यास से तड़प-तड़प कर मर जाए।… मुझे याद है कि आज से बीस साल पहले तेजसिंह नाम का एक किसान राजपूत इन टीबों में खो गया था, वह बेचारा तड़प-तड़प कर मर गया…। फिर पागी (खोजी) जसवन्त ने उसे खोजा। जसवन्त भी कमाल का पागी था।… मेरे कहने का मतलब है।" नाना ने एक पल रुक कर कहा, "आदमी अपनी जलमभोम (जन्मभूमि) तभी छोड़ता है जब उसका पेट नहीं भरता ! रोटी-रोजी के लिए ही तो आदमी आसाम (असम) तक गया है। जानते हो

बेटा, वहाँ तब पीने का सही पानी भी नहीं मिलता था।'''चन्द बातों को समझ ले यात्रा में किसी पर पूरा विश्वास मत करना, अपनी चीज को अपने कब्जे मे रखना, जतन यह करना कि अपने हाथ से बना कर ही खाऊँ।''' रास्ते का खाना-पीना चोखा नहीं होता।'''कलकत्ता पहुँच कर कागद लिखना और यह कोशिश करना कि कुछ कमाऊँ। हजारों कोस आदमी नकद नारायण कमाने ही जाता है, मौज-मस्ती मारने नहीं।

नारायण ने सबको आश्वासन दिया कि वह कड़ी मेहनत करके पैसा कमायेगा।

□
□

चाँदा जब मालिये में पहुँची तब नारायण अपनी संदूक को सभाल रहा था। पाँवों की आहट के साथ उसने देखा।

चाँदा उदास-उदास-सी उसके सामने खड़ी थी। दीये के उजास ने उसकी उदासी को बढ़ा दिया था।'''

नारायण ने संदूक को बन्द कर दिया और अपनत्व से बोला, "खड़ी क्यूँ है, बैठ जा।"

चाँदा बैठ गयी।

नारायण ने उसे प्रश्न भरी दृष्टि से देखकर कहा, "बहुत उदास हो।"

चाँदा की आँखों में गीलापन चमक उठा।

नारायण ने उसके ठंडे हाथ पर अपना गर्म हाथ रख दिया। दबा दिया। कहा, "हताश न हो, मैं भी बेमन ही जा रहा हूँ। सच तो यह है कि बड़ी बेबसी के कारण जा रहा हूँ। घर की स्थिति को तो तू जानती है, न घर का घर है, न कोई पेट भरने का साधन। यहाँ रहकर तो हम लोग केवल रूखी-सूखी ही खा सकते हैं। तुम अपने पीहरवालों को देखो न, आज भी मामूली-सी खेतीबाड़ी तथा घास व लकड़ियाँ बेचकर जीवन निर्वाह करते हैं। कोई परिवर्तन नहीं। जानवर की तरह पेट भरना और जीना। मैं तो एक तरह का जीवन जीते-जीते जल्दी ही ऊब जाता हूँ।"

चाँदा हठात् बोली, "तभी तो तुम परदेश जाना चाहते हो? मेरे साथ

रहते-रहते तुम्हारा जी भर गया न ?"

आज अप्रत्याशित रूप से स्वतः ही नारायण के लिए 'आप' से 'तुम' सम्बोधन हो गया। चाँदा को इसका जरा भी आभास नहीं हुआ। भाव विभोरता-सी थी उसमें।

नारायण ने उसके चेहरे को अपनी दोनों हथेलियों के बीच लेकर कहा, "ऐसा कभी नहीं हो सकता। परायी-नारी को देखना भी मैं पाप समझता हूँ। पति-पत्नी के बीच यदि यह पाप आ जाय तो उनका गृहस्थ जीवन नष्ट हो जाता है। "मेरे कलेजे की कोर, तू विश्वास रखना,"'मैं कोई गलत काम नहीं करूँगा।"

"मैंने सुना है कि बंगाल देश में चन्द स्त्रियाँ जादूगरिनी होती हैं। वे मर्द को मोह लेती हैं। जादू-टोने से उसे दिन में भेड़-बकरी बना देती हैं और रात को वापस मर्द। इस तरह वे धीरे-धीरे मर्द का लहू पीकर मार डालती हैं।"

नारायण हँस पड़ा। उसे अपने पास खींचता हुआ बोला, "तू बड़ी भोली है। क्या यह संभव है कि आदमी को भेड़-बकरी बनाया जा सकता है'''नहीं' नहीं'''ये सब निराधार बातें हैं। इनमें कोई दम नहीं। वहाँ की स्त्रियों के बाल जरूर लम्बे होते हैं। वे काली होते हुए भी बड़ी सांवणी होती हैं। सच्चरित्र और सती साध्वी होती हैं।"

"नहीं-नहीं, आप झूठ बोलते हैं।" उसने अविश्वास के साथ कहा।

"नहीं, मैं झूठ नहीं बोलता। दरअसल बात यह है कि कुछ चरित्र-हीन मर्द वहाँ गये और पाप के रास्ते पर चल पड़े। जब थक-हारकर लौटे तब उन्होंने ये कहानियाँ गढ़ ली ताकि उन्हें उनकी स्त्रियाँ क्षमा कर दें।"

"तुम ऐसा न करना।" उसके स्वर में हजारों प्रार्थनाएँ थीं।

"नहीं, मेरी 'जलमजेवड़ी' नहीं, जो मेरे लिए पाप है, उसे मैं कभी नहीं करूँगा। चाहे मर्द हो चाहे औरत पर जो अपने धर्म को त्याग कर पाप के रास्ते पर चलता है तो उसे नरक मिलता है। फिर कठोर मेहनत करने वालों का गलत कामों की ओर ध्यान भी नहीं जाता।"

चाँदा को विश्वास हो गया कि उसका पति किसी भी हालत में गन्दे कामों को नहीं अपनाएगा। वह रात उन्होंने आँखों में ही बिता दी।

पूरा एक साल बीत गया इस बीच नारायण के पांच पत्र आये थे। वह राजी-खुशी था और उसने सौ रुपये और कपड़े भेजे थे। चांदा के नाम से कोई समाचार नहीं था फिर एक-एक करके सात वर्ष बीत गये।

इन सात सालों में चांदा एकांत की दुर्वहपीड़ा और खालीपन से तड़फड़ा उठी। उसे लगता कि पति के बिना लुगाई मांस के लोथड़े के समान है। वह भीतर ही भीतर दीमक खायी लकड़ी की तरह सुलगने लगती है, खोखली हो जाती है। जब कोई बटोही या लादेवाला ऊंट सवार गाता हुआ घर के पास गुजरता—

देख्यो पूनम चांद जद,
तारां छाई रात
म्हारै हिवड़ै कसकगी—या हेतां री बात···
मन बुगली उडतौ रहयौ,
पिव हेतां रै पंथ,
सांझ पडी, मन ऊबग्यो,
आंख उडीकै कथ···

तो चांदा के हृदय में हूक उठ जाती और उसे कोमल सेज भी काटने दौड़ती।

इन सात सालों में उसने सभी ऋतुओं का सात बार अनुभव किया। उसे लगा कि हर ऋतु में उसे पति-वियोग का एक पृथक अनुभव हुआ है। फागुन में तो वह उन्मादित हो जाती थी। जब लुगाइयाँ सज-धज कर गीत गाती तो उसे चीखने की इच्छा होती।···जब देवर भाभी होली के रंग डालते थे तब उसे अपने आपको रंग मे डूबा देने का मन होता था। जब लोग मंडली-बना कर अश्लील गीत गाते हुए गुजरते थे तब चांदा को लगता था कि दाम्पत्य जीवन की सारी अश्लीलतायें उसके शरीर से चिपक गयी हैं!···फिर चैत में गणगौरों के मेले और गीतों की गूंज।

कभी-कभी चांदा अपने पति को भी कोसने लगती थी कि गये तो वापस नहीं आये। वहीं पूरबदेश मे लीन हो गये। वे कभी सोचते ही नहीं

कि अकेली चाँदा के क्या हाल हुए होंगे ?

वह ज्यादा बेचैन होती तो गुमसुम बैठ जाती।

जेठ-बैशाख की तपती धूप में उसे कई बार पानी में नहाना अच्छा लगता पर पानी के अभाव में वह मन मार कर बैठ जाती थी। पानी का दुरुपयोग किसी भी हालत में नहीं किया जा सकता था।

फिर तपती लू में जलता हुआ बदन सावन की ठंडी फुहार और वर्षा में भीगता तो उसका मन आह्लादित हो जाता था। उफनते हुए नालों को देखकर उसके भीतर ऐसा ज्वार उठता कि वह खम्भे से चिपट जाती। कभी-कभी उसे इसका भी भ्रम होता था कि जैसे-जैसे वह वर्षा में भीगती जाती है, वैसे-वैसे उसके भीतर दहक-सी उठती है। उसे अपने भीतर कई-कई नदियाँ बहने का आभास होता था। वह कभी-कभी सारी रात अपने सुडोल कपोलों पर अश्रु ढरकाती बीता देती थी। जब बिजली कड़कती थी तब वह डर कर काँप जाती थी और अपने पति को हजार उलाहने देती थी कि वह धन के लिए पत्नी को त्याग कर परदेश क्यों चला गया ?

चाँदा का जीवन बड़ा ही विषम हो रहा था। जब ज्यादा ही मन ऊबने लगा तो वह तीज पर अपने पीहर चली गयी।

उसका बाप घास बेचने आया था। वह अपने साथ ले गया—ऊँट पर बिठाकर उसे।

जाने के पहले उसकी सास जमनी ने समधि से घूँघट निकाल कर साफ-साफ कह दिया था कि वह उसे तुरन्त भी वापस पहुँचा देंगे। बीनणी के बिना उसका मन बिल्कुल नहीं लगता है।"'उसके बाप ने आश्वासन दिया कि वह जल्दी पहुँचा देगा।

पर चाँदा का मन पीहर तब तक ही लगा रहता जब तक सतूड़ी रहती थी। सतूड़ी एक बच्चे की माँ हो गयी थी और वह अपने पति-प्रेम प्रसंगों को खुले शब्दों में सुनाती थी जिससे चाँदा का मन अव्यक्त व्यथा से भर आता था। वह घर के नौरे की ठंडी रेत पर लेट जाती थी। यदा-कदा वह सतूड़ी के सामने ही अपने शरीर पर रेत डालती रहती थी।

कभी-कभी सतूड़ी उसे रोकती थी कि वह ऐसा क्यों करती है ! चाँदा उसे बुझे-बुझे स्वर में कहती कि उसे अच्छा लगता है, मन को शांति

मिलती है।

चाँदा भीतर ही भीतर जैसे सूखती जा रही थी। उसकी तृष्णाएँ फूलों की तरह खिलकर मुरझा रही थीं। शीत ऋतु में जैसे हर वस्तु सिकुड़ जाती है, ठीक वैसा ही हाल उसका था। डाॅफर और हील के ठंडे स्पर्श चाँदा को कंपा देते थे और वह सीऽऽ···सीऽऽ की ध्वनि के साथ कार्यरत रहती थी। जब कभी उसे रात को नींद नहीं आती तो वह गहरे अँधेरे में उठकर गेहूँ पीसने लगती थी। चक्की की घर्रर-घर्रर आवाज से उसकी सास आ जाती थी और उसे टोकती थी कि अभी तो रात के दो ही बजे हैं!

चाँदा की सास तारों के हिसाब से समय बता दिया करती थी, वह काफी ठीक होता था!

चाँदा संकेत से बताती थी कि उसे नींद नहीं आती। उसने अभी तक सास से बोलना शुरू नहीं किया था, साथ ही वह घूंघट निकालती थी।

वह प्रायः सास को जवाब हाथों, सिर व डिचकारी के संकेतों से दिया करती थी जिसे सास सहजता से समझ लेती थी। -

"नींद और भूख किसी की सहेली नहीं होती।" जमनी सूक्तियों में बोलती, "नींद कांटों पर भी आ जाती है और भूख समय पर लगती ही है।"

चाँदा कोई उत्तर नहीं देती।

निरन्तर चक्की चलाती रहती। उसका अंग-अंग जब थकान से टूटने लगता तब वह आकर सो जाती।

उसकी बेचैनी, तड़फड़ाहट, और कामेच्छा से उसकी सास परिचित हो गयी।

सोचने लगी, "जवानी की उम्र है। भगवान की दया से बीनणी में रंग-रूप भी चोखा है। ऐसी स्थिति में कहीं खराब रास्ता अपना लिया तो?···घर से कदम बाहर रख लिया तो? ··किसी की मीठी-मीठी बातों में आ गयी तो?···

प्रश्न पर प्रश्न जमनी को कांटों की तरह चुभते रहे!

एक दिन उसने चाँदा को बुलाया। कहा, "बीनणी! आज तो गोविंद

की बहू ने मुझे ताना मार दिया कि तेरी बीनणी के पाँव नंगे है। ' तेरी पायल कहाँ है !"

चाँदा स्वयं चौंक पड़ी।

सचमुच सुहागरात, उसने जो पायल खोली, उसके बाद दुबारा पहनी ही नही। सास को सही-सही बात बताने मे उसे शर्म आयी। वह चुपचाप खड़ी रही।

सास जमनी 'ओरे' के भीतर गयी। उसने अपनी सन्दूक खोलकर चाँदी की भारी-भारी कड़ियाँ और सूत (एक गहना) निकाल लायी। इनका वजन एक-एक सेर था।

जमनी ने चाँदा को ये गहने दिये। किसी ने जमनी को बताया था कि इनसे नसें दबी रहती हैं और कामेच्छा कम जागती है। यह सच है या अंध-विश्वास यह स्वयं जमनी भी नही जानती थी।

चाँदा ने उन्हें पहनने से इन्कार किया तो जमनी बोली, "ना-ना··· ना···इससे लोगों में इज्जत बढ़ेगी कि जमनी की बहू ने सेर भर चाँदी पहन रखी है ! इसे पहन ही लो।

चाँदा ने गहने पहन लिये।

जमनी ने बताया, "गोकुलचद जी कोठारी का बेटा कलकत्ता से आया है। उसने बताया है कि नारायण बहुत ही चोखी तरह है। वह आजकल गंगा-घाट पर कपडे बेचता है। आशा है, काम बढ जायेगा और वह उन्नति करेगा।"

जमनी ने एक पल रुक कर फिर कहा, "गोकुल चंद जी कह रहे थे कि नारायण मेरी बड़ी चिंता करता है। माँ-माँ कहते उसका गला सूख जाता है, आँखें भर आती हैं। बीनणी ! इस कलियुग मे सरवणकुमार (श्रवण कुमार) जैसा बेटा भाग मे ही मिलता है।

चाँदा के अन्तस में एक बवण्डर सा उठा जो कंठ मे आकर थम गया। क्या उसका पति उसे दो शब्द भी नही कहला सकता ? चिट्ठी तो वह पढ़-लिख नही सकती पर अपनत्व-भरे शब्दों को तो सुन सकती है !

चाँदा को विमूढ़ देखकर वह फिर बोली, आने-जाने के बारे मे नही कहलाया है। वैसे पाँच साल से पहले आना संभव भी नही है।''

कठिन यात्रा है ! रास्ते में घोर डाकुओं का डर।···बीनणी ! कमाई करनी बहुत ही कठिन है।

चांदा का मन भर आया। कंठ में फंसा बवण्डर बाहर निकल आया। वह फस् से बताशे की तरह फीस गयी। रोना बाहर आ गया।

उसकी सास जमनी हैरान-सी उसे देखने लगी। उसकी आंखें आश्चर्य से फैलती गयी।

चांदा मुंह में पल्लू डालकर अपने मालिये में जाकर सुबक पड़ी।

सास जमनी नहीं आयी।

वह तो और नाराज हो गयी। सोचने लगी कि बहुत ही निर्लज्ज हो गयी है ? जोबन इसे ही सताता है क्योंकि इस अकेली का पति ही परदेश गया है?···यदि परदेश में गये बाणियों के बेटों के नाम गिनाने लगूं तो दस बांस जितनी कतार लग जाए।···क्या उनकी लुगाइयां भाटे (पत्थर) की बनी हैं ! क्या उनके हृदय नहीं। बाणिये की बेटी इतना जी कच्चा करेगी तो उनके पति परदेश जाकर फिर कमा कर ले आये ?·· फिर तो सब के सब अपनी-अपनी बहुओं के घाघरे के ढेरे (बड़ी जूएं) बन जायेंगे।

जमनी अपनी बहू के इस क्रियाकलाप से काफी उत्तेजित और विचलित हो गयी। उस परम्परावादी लुगाई को यह स्वाभाविक प्रक्रिया मर्यादा भंग-सी लगी। बड़ी हैरान हो रही थी।

चांदा बस रोये ही जा रही थी।

पति के संग क्या सुख होता है, यह वह सतूड़ी से जान चुकी थी। फिर प्रेम की ढाई आखर तो सभी लिख-बोल सकते हैं।···

लुगाई के जीवन में कोई सुख नहीं है।

इधर सास जमनी बड़बड़ाती जा रही थी।

□

चांदा को गिरी ब्राह्मणी ने पूछा, "बहू जी ! आप इस उम्र में अकेली कैसे रहती हैं !

चांदा कई दिनों से गिरी की हरकतों का अध्ययन कर रही थी।

गिरी गरीब ब्राह्मण परिवार की बेटी थी और उसकी ससुराल

यजमानी पर जीवनयापना करती थी। उसका पति भंगेड़ी था और चरित्र का कच्चा। रघुनायसर कुए के पास उसकी ससुराल थी। पति न तो कमाता था और न कमाने के लिए जतन करता था। इस पर उस गरीब को बात-बात पर मारता-पीटता था। इसलिए गिरी कई बनियों के यहाँ काम-काज करने जाती थी।

गिरी बार-बार चाँदा को पूछती थी कि वह पति के बिना कैसे रहती है?

एक दिन उसने कहा, "सतिया महाराज, आपके रंग-रूप की बड़ी तारीफ कर रहे थे।"

चाँदा का माथा ठनका! उसके भीतर हलचल-सी हुई। वह व्यंग से बोली, "फिर?"

"आप कहो तो अपनी कोटड़ी में उसे बुलाऊँ?"

तड़ाक्!

चाँदा ने जोरका चाँटा गिरी के गाल पर मारा और वह क्रोध मे लाल-पीली होकर बोली, "मालजादी रांड! घर में पाप फैलाने आती है। तू सोचती है कि मारवाड़ी की बेटियाँ अपना धर्म बेचती है, अपना सत्य कलंकित करती हैं?·· ऐसा होता तो कोई भी पति अपनी पत्नी को छोड़ कर नहीं जाता। दुनिया का कोई सुख 'सत' (सतीत्व) से बड़ा नही है। अभी यहाँ से चली जा और फिर अपना काला मुँह मत दिखाना।"

गिरी सन्नाटे में आ गयी। उसका शरीर जड़ हो गया। उसे जरा-सी भी आशा नही थी कि यह छोटी-सी बहू इतना बड़ा कदम उठा लेगी। गिरी को भी सहसा आत्मग्लानि हुई कि वह जिस थाली में खाती है, उसमें उसे छेद नहीं करना चाहिए।

उसकी सूरत रोनी-रोनी-सी हो गयी।

वह नीचा मुँह किये चल पड़ी।

बड़ी नाटकीयता से चाँदा की सास ने प्रवेश किया और चाँदा की पीठ थपथपाकर कहा, "बीनणी! मेरा जी प्रसन्न हो गया। तेरे जवाब ने मेरी छाती फुला दी।···बीनणी! सच कहती हूँ कि इतने विश्वास के बिना कौन पति अपनी जोबन छाई धण को छोड़कर हजारों कोस कमाने जायेगा?

"...वह तभी जाता है जब उसे इस बात का विश्वास है कि उसकी धण (पत्नी) उसके साथ विश्वासघात नही करेगी, उसके मुँह पर कालिख नही पोतेगी, अपना धर्म और 'सत' को मिटने नही देगी।"...बीनणी! सत वेचने वाली लुगाई नरक मे उबलते हुए तेल में डाली जाती है। उसका इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते है।"

और उसी रात जमनी ने चाँदा के मन को मजबूत और कामेच्छा को मरणासन्न करने के लिए एक कहानी सुनायी।

सारे कार्यों से निवृत्त होकर सास-बहू दोनो बैठ गये।

पावस का चन्द्रमा नीले आकाश मे चमक रहा था। ठंडापन बढ़ गया था। सारा गगन एकदम धुला-धुला लग रहा था। कुएँ के पास उगे खेजड़े नहाये-नहाये से लग रहे थे। हवा काफी ठंडी चल रही थी।

जमनी ने कहा, "बीनणी! एक बात है, ध्यान से सुनना और हुंकार देती रहना।

लोग कहते हैं—युद्ध में नगारा
बात मे हुंकारा
हुंकारा दिये बात
चोखी लागे
सुनने वालों के
दुख भागे।

भगवान भली करें। बहू! यह कहानी मैं तुम्हें खास बात के लिए सुना रही हूँ। इस कहानी को सुनने के बाद बुरे विचार मन मे आयेंगे ही नही।

एक सेठ था।

उसका बेटा भरी जवानी मे अपनी बहू को छोड़कर व्यापार करने परदेश को चला गया। बहू अकेली रहकर तड़पने लगी। घी, दूध, मक्खन, मलाई का भोजन और सारी सुख-सुविधाएँ। फिर आस पास का वातावरण भी बडा ही उन्मादी था। सेठ के बेटे की बहू को 'मदन' सताने लगा।

हालाँकि सेठ काफी बुद्धिमान था। वह सब कुछ जानता-बूझता था इसलिए उसने अपने घर मे कोई नौकर नहीं रखा!

एक दिन सेठ की बहू ने अपनी खास बाँदी से कहा, "चम्पली ! मेरा एक काम करेगी।"

"कहिए बहू जी।"

"किसी से कहना नही।"

"नही।"

"अपने घर मे केवल नौकरानियाँ ही है, एक नौकर क्यो नही रख लेती ?"

"क्या ?" वह चौंक पड़ी।

"हाँ...पैसा मैं दे दूंगी।

नौकरानी चम्पली स्वामीभक्त थी। उसे बहू की बात से यह अनुमान हो गया कि कुछ दाल मे काला है। बहू जी अधर्म के रास्ते पर चलनेवाली हैं।

वह सेठ के पास गयी। उसने सेठ को सारी बात बता दी।

सेठ काफी समझदार था। चम्पली की बात सुनकर उसके कान खड़े हो गये।

उसने चम्पली से कहा, "मामला गंभीर है।...मैं उपाय कर दूंगा।"

उसी दिन सेठ ने सारी नौकरानियों की छुट्टी कर दी। चम्पली को भी कह दिया कि वह भी एक बार चली जाए। आए तो काम न करे। बहू जी को बताये कि सेठ जी ने उसका हिसाब कर दिया है।

दोपहर होते-होते सेठ की हवेली सूनी हो गयी। जहाँ हर पल चहल-पहल रहती थी, वहाँ अपूर्व शांति छा गयी। जिस घर मे आदमी-आदमी दिखायी देते थे, वह घर भुतहा हो गया।

बहू विस्मय आहत हो गयी। काफी देर तक वह सोचती-विचारती रही। बाद मे उससे नही रह गया। वह अपने ससुर के पास पहुँची।

खंभे की ओट लेकर वह बोली, "आप मेरे ससुर ही नहीं, पिता समान हैं, मैं पूछती हूं कि आज सबकी सब नौकरानियाँ कहाँ चली गयी ?

सेठ ने लम्बा साँस लेकर कहा, "बहू ! तुमसे क्या छुपाऊँ ? हमारे व्यापार मे बड़ा घाटा हो गया है।"

"सच।"

"हाँ बहू, अब तुम्हे अपने हाथ से ही काम करना पड़ेगा।" नौकर-चाकर रखने की स्थिति नही रही है।"

"हे प्रभु !" बहू ने भगवान से प्रार्थना की।

"बस, आज से लग जा काम मे।"

अब सेठ की बहू चार बजे झांझरके उठकर गेहूँ पीसती थी। फिर गायो का गोबर थापती थी, फिर खाना पकाती, बर्तन मलती, फटे कपड़ों के टाके लगाती, अनाज को चुगती · फिर शाम का भोजन···!

काम पर काम।

श्रम पर श्रम।

रात को बिस्तर पर जाते-जाते उसका शरीर टूटने लगता था। वह तडाछ खाकर गिर पडती थी और फिर उसकी आँखें सुबह चार बजे ही खुलती थी। खुलती क्या, जबरदस्ती खोली जाती थी। करे भी क्या, बडे काम जो पडे रहते थे।

लगभग एक माह के बाद सेठ ने चम्पली को बुलाकर कहा, "चम्पली ! जा अपनी बहू जी से पूछ कि मैं कोई नौकर लाऊँ ?"

चम्पली ने जाकर सेठ के बेटे की बहू को पूछा तो बहू बोली, "नहीं-नहो···नही···आजकल तो मैं काम करते-करते इतना थक जाती हूँ कि बुरे कामों के बारे मे सोच भी नही सकती। अंग-अंग में जरा-सी शक्ति भी नहीं रहती है। सच चम्पली, मेरे मन में पहले पाप आ गया था। मुझे इसका पछतावा है।"

अपनी कहानी को खत्म करके सास जमनी ने कहा, "बींनणी ! धर्म और सत को रखकर जो औरत जीती है, उसके सारे जमारे (जन्म) सुधर जाते हैं। अच्छा यही रहेगा कि तू अपने आपको काम और हरिनाम मे खपा दे। जो इन दो कामों में लीन हो जाता है, उसके मन मे विकार उठते ही नही हैं।"

चांदा शांत बैठी रही।

बादल का एक टुकड़ा लावारिस-सा पवन-रथ पर आरूढ होकर आया और चांद को ढँक गया। पल भर के लिए अँधेरा छा गया।

"जा, सो जा।"

चाँदा चली गयी।

उसका मन फिर अपने पति की याद में झुलसने लगा। उसकी तड़प बढ़ने लगी। वह बिस्तर पर लेट कर श्रीकृष्णं शरणं ममः का जाप करने लगी।

वह तब तक जप करती रही जब तक उसे नींद नहीं आयी।

□

□

सात साल बीत गये। गत सालों में यह पता तो चल गया कि नारायण ने अपना काम जमा लिया है। एक दूकान भी कर ली है।

चैत का महीना था।

छिन्नायतियों के वास में स्त्रियाँ अपने मधुर स्वर में गीत गा रही थी।

चाँदा आज बड़ी प्रसन्न होकर सुन रही थी। उसका मन-मयूर नाच रहा था। अन्तस के सूखे प्रान्तर मे एक साथ कई नदियाँ बह उठी थी। सब कुछ गीला हो गया था। अन्तस की बंजर धरती पर सहसा कई वृक्ष उग आये थे।

उसे सर्वत्र हरियाली दिखायी दे रही थी।

कल वे आयेंगे।

वे, उसके प्राणप्रिय, स्वामी, पति, भरतार और सेज के सिणगार! नारायण···नारायणदास दम्माणी!

आज उसे गणगोर का गीत बहुत ही अच्छा लग रहा था। स्वर आ रहा था—

गढ़ कोटां सूं उतरी
हाथ कंवल के रो फूल
चढ़ती रा बाजे घूंघरां
उतरती री रमझोल

यह रमझोल···? चाँदा किसी मधुर पुलक से भर गयी। सोच बैठी — यह निगोड़ी और बेईमान रमझोल···। यह बोल जाती है। हृदय का भेद खोल जाती है।

उस रात उसे नीद नही आयी।

उधर जमनी और उसकी माँ भी रात बड़ी देर तक बातचीत करती रहीं। मामी पीहर गयी हुई थी।

सभी को सुबह की प्रतीक्षा थी।

पर रात···

आज चाँदा को रात पहाड़-सी लगी।

बार-बार वह एक अजानी सिहरन और मीठी यादों से भर जाती थी। करे तो क्या करे? उसने खिड़की की राह यूँ ही तारे गिनने शुरू कर दिये। फिर उसने अपने को झिड़का—पगली, तारों को कैसे गिनेगी? एक चन्द्रमा नवलख तारा·· नौ लाख तारे भला कैसे गिने जायेंगे। उसकी दादी कभी-कभी सुनाया करती थी एक सती की कहानी। उसमे दो पंक्तियाँ थीं एक चन्द्रमा नव लखतारा, एक सती और नगर सारा·· सती एक ही सारे नगर से बड़ी होती है।

चाँदा के अन्तराल मे सुख का सागर लहराया। संतोष के उनचास पवन चले। वह एकदम सती है, उसने पराये-पुरुष के बारे मे सोचा ही नही।···पर मैं अपने पति से यह जरूर कहूँगी कि उस पीड़ को मैं कोई नाम तो नही दे सकती मेरे भरतार, जिस पीड़ की आग मे मैं निरन्तर दग्ध हुई हूँ। वह आग किसी को दिखायी नही देती। वह अपने पति को यह भी कहेगी कि आपकी माँ दिन-प्रतिदिन अपना स्वभाव कठोर कर रही हैं। वह भेड़िये की तरह मुझ पर निगाह रखती है। क्या ही अच्छा हो कि वह मुझे अपने साथ ले जाए।

आखिर बातों का सिलसिला खत्म होने लगा और नीद उसकी आँखों मे तिरने लगी।

कब उसे नीद आ गयी, नही मालूम !

☐
☐

नारायण के आते ही घर में एक नया उत्साह-सा दिखायी दिया। वह तीन संदूक सामान भरकर लाया था। एक बोरी मे दिबड़ियाँ मानी (लोगों का भेजा हुआ सामान था) थी। उसके कुर्ते के नीचे एक लाल कपड़े की

लम्बी थैली थी। उसने उस थैली को अपनी माँ को सौंप दिया।

नारायण को सारे लोग घेरे बैठे थे। नाना, दो मामा, माँ, नानी, अड़ोसी-पड़ोसी पर चाँदा डागले की जालीदार खिड़की में से अपने पति के दर्शन कर रही थी। उसमें अपार मोह था। एक वाचालता थी पर साथ में अपूर्व संयम भी।

जी भरकर देखने के बाद उसने एक दीर्घ निःश्वास लिया और अपने मन को समझाया— पगले, तुम्हें तो अपने स्वामी से रात को ही मिलना है।

वह फिर काम में लग गयी।

दिन भर नारायण व्यस्त रहा। वह गोविंद माली के साथ लोगों की रिमड़ियाँ और चिट्ठियाँ देने के लिए चला गया।

चाँदा भी काम करती रही।

घर के वातावरण से उसने जान लिया था कि उसका पति परदेश से बहुत धन कमा कर लाया है।

आखिर रात आयी।

चाँदा ने सबसे ऊँचे डागले पर अपने बिस्तर बिछा दिये थे। पानी का 'दूणिया' (छोटी मटकी) दीवार पर बनी चकोर जगह पर रख दिया था। डागले पर आते ही पाँवों के भारी जेवरों को उतार कर वह उन्हें देखने लगी। उसके होंठों पर अर्थ भरी मुसकान पसर गयी। उन्हें सम्बोधन करके बोली, "अब तुम्हारी जरूरत नहीं है।"

पाँवों की आहट सुनायी पड़ी।

पूरे सात वर्ष बाद उसका पति उसके संग चौपड़-पासा खेलेगा।···
वह विभोर-सी होकर दीवार के सहारे बैठ गयी। नयन मूँद लिये।

नारायण आया।

उसने आते ही धीरे-से उसके कंधे पर हाथ रखा। चाँदनी दूध नहायी लग रही थी। उसका निर्मल प्रकाश डागले पर फैला हुआ था पर जहाँ चाँदा बैठी थी, वहाँ अँधेरे का एक टुकड़ा था जिसने उसकी आकृति को ढँक रखा था।

पति का स्पर्श पाकर उसमें सुख की लहरें मचलने लगी। उसने अपनी

आँखें खोली।

"क्या बात है बैठे-बैठे आँख लग गयी ?"

चाँदा के भीतर विपुल उद्वेग मचल रहा था। उससे उसका कंठावरोध हो गया। वह उठकर खड़ी हो गयी। पति को देखने लगी। पति का व्यक्तित्व निखर गया था। रंग अधिक साफ हो गया था। गले में सोने की जंजीर थी।

छोटी-छोटी मूँछें। मुँह में पान।

वह अपलक देखती रही। सुख-दुख के छोटे-छोटे द्वीप उसके भीतर जन्म गये थे।

नारायण भी भाव-विभोर-सा उसे देखने लगा। चाँदा के भीतर का उद्वेग फूट पड़ा। वह सिसक कर नारायण से लिपट गयी। रोती-रोती बुदबुदाने लगी—मुझे छोड़कर मत जाना···मत जाना ! मैं पागल हो जाऊँगी।"

नारायण ने उसे आश्वासन दिया कि वह नहीं जायेगा !

प्रशान्त मौन ! सब कुछ ठहरा-ठहरा। चाँदनी भी रुकी-रुकी-सी। चाँदा और नारायण चुप-चुप। तूफान आकर चला गया।

नीचे से सास जमनी ने पुकारा, "बीनणी ! सीढ़ियों पर दूध रखा है, ले जा।"

नारायण नीचे जाकर दूध का भगोना ले आया। मलाईदार दूध था।

नारायण ने उसे कटोरी में डाला। चाँदा उसकी गोद में सोयी थी—निस्पंद-सी।

नारायण ने नीचे झुक कर कहा, "ले दूध पी ले, बड़ा ही स्वादिष्ट है। खूब मलाई है।"

"दूध आप पी लीजिए।"

"मैं अकेला नहीं पीऊँगा।"

"अरे, दूध मोट्यार (पति) को ही पीना चाहिए। देखिए न, आप परदेश में कितने दुबले हो गये है। अब यहाँ रहकर घी-दूध खाइए।"

"यहाँ काम ही क्या है ! बस खाना-पीना और मौज करना।"

सुन ! पहली यात्रा में ही प्रभु गिरराजधारी ने अपनी विनती सुन ली। अच्छा काम जम गया है। इस बार छोटा-सा घर मोल ले लेंगे और हवेली बनाने के लिए जमीन !···तेरे लिए गहने भी बन जायेंगे।"

चांदा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह तो अपलक देखती रही।

नारायण ने भी यही अनुभव किया। उसकी पत्नी सचमुच चांद की तरह सुन्दर है।

यह सही भी था, चांदा अप्रतिम रूप-यौवन की स्वामिनी थी। रूपाली गणगौर ! गोरी-चिट्टी।

"लो पहले दूध पी लो।"

"नहीं, मैं अकेला दूध नहीं पीऊँगा।"

"नखरे मत कीजिए।"

"नखरे तो तू करती है। अच्छा, पहला घूंट तू पी।"

"आप मेरा जूठा पीएँगे।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"छिः धणी क्या अपनी लुगाई का जूठा पीता है। मुझे पाप लगेगा।"

"लगने दे।"

"नहीं।"

पर जब तक चांदा ने एक घूंट नहीं लिया तब तक नारायण ने दूध नहीं पिया।

नारायण ने आधा दूध चांदा को पिला ही दिया।

चांदा ने महान तृप्ति का अनुभव किया !

"आप मेरी एक विनती मानेंगे।"

"बता, कुण (कौन) सी।"

"मुझे आप अपने साथ ले चलिए।"

नारायण अवाक्-सा रह गया। वह विस्मय से बोला, "तू पागल है। कलकत्ता कोसायत थोड़े ही है कि रवाना हुए और पहुंच गये।···बड़ा कठिन रास्ता है। डाकू-लुटेरे लुगाइयों को लेकर भाग जाते हैं। फिर तेरी जैसी फूठरीफरी (बहुत सुन्दर) लुगाई को तो कोई अवश्य ही उठा कर ले जायेगा। और यदि यह बात कोई सुन लेगा तो घर में हंगामा मच

जायेगा ।"

"आप एक बार माँ से कहकर तो देखिए ।"

नारायण ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "मुझे तो अभी इस घर में रहना है। सुनते ही माँ भड़क उठेंगी !"

नारायण के चेहरे पर आतंक-सा फैल गया। वह फिर बोला, "जो अनहोनी है, वह होनी नहीं हो सकती। अरे ! तुझे तो आज प्रसन्नता में नाचना चाहिए ।"

चाँदा की आँखें भर आयी।

नारायण ने कलकत्ता में काफी रुपये बचाये थे। पूँजीपति बनने की लालसा उसकी तीव्र हो गयी थी और एक अच्छे व्यापारी की तरह उसमें निर्ममता और तटस्थता जन्म ले रही थी।

नारायण सिर को झटका देकर बोला, "तू सफा गैली (पागल) है। यदि ऐसी बातें करेगी तो तुझे लोग बाणिये की लुगाई भी नहीं मानेंगे।···बाणिये की लुगाई के शरीर पर सेर-डेढ़-सेर सोना न हो तो बाणिया की लुगाई लगती ही नहीं।·· अरे ! अब ही तो गाड़ी पटरी पर आयी है ! तुझे विश्वास नहीं होगा पर मैं थोड़े ही बरसों में अच्छे-अच्छे घन्ना सेठों को पीछे धकेल दूँगा। तेरे हवेली होगी, रथ होगा, बग्गी और इक्का होंगे, ठाकर पहरा लगायेंगे। दो-दो चार-चार आदमणें (दासियाँ) काम करेंगी। · और माँ के बाद तुझे लोग चाँदा सेठानी कहेंगे !···जी छोटा मत कर।"

"नहीं · नहीं ढोल कँवरजी नहीं, मैं आपके बिना इस सेज पर तड़प-तड़प कर रात बिताती हूँ। दिन को हाड़-तोड़ मेहनत में डुबो देती हूँ। मेरी भूख और तिस मर जाती है। आप लुगाई के भीतर की आग का अहसास नहीं कर सकते।"

छत पर कोचरी कचर-कचर बोल उठी। कोचरी की शक्ल उल्लू से मिलती-जुलती होती है।

नारायण ने उसे उड़ा दिया।

फिर शांति छा गयी !

नारायण ने फिर कहा, "सुन, मैं तेरे लिए दो सौ तोला सोना लाया

हूँ। तेरे लिए माँ इतने अच्छे गहने बनवाएँगी, तू गवरजा लगेगी। तुझ मैं सोने से पीली कर दूँगा।"

चाँदा को लगा कि उसके आसपास की चादनी पीली पड़ गयी है। रागात्मक सम्बन्धों का एक-एक रेशा टूट रहा है। धीरे-धीरे उसकी प्रेम धड़कनें सोने-चाँदी के गहनों की खनक में डूब जायेंगी।

वह सुबक पड़ी।

नारायण ने उसे अपने सीने से चिपका कर कहा, "तू साँचेली (सचमुच) बाणिये की बेटी नहीं है। बाणिये की असली बेटी को तो धन से ही प्रेम होता है। दो सौ तोला सोने का नाम सुनते ही वह खुशी में झूम जाती है और तू वसका भर रही है। इस बार कलकत्ते से आऊँगा तब तेरे लिए मोतियों का हार बनाकर लाऊँगा।"

"आने के पहले ही जाने की बात शुरू कर दी है?" चाँदा ने तिक्त स्वर मे कहा।

"इसमें झूठ क्यों बोलूं? जाना तो पड़ेगा ही। पिताजी के श्राद्ध तीन माह बाद है। महाभोज करूँगा। 'साला' के सारे गुरुओं को खिलाऊँगा। स्त्री, पुरुष और बच्चे! माँ की बड़ी इच्छा है।"

चाँदा का मन बुझ गया। वह मुर्दा-सी बन गयी।

□
□

चाँदा को लगने लगा कि उसे सारी उम्र मे अधिकांश पति-विछोह मे तिल-तिल जलना है। उसे हृदय की समस्त भाव-पंखुरियाँ को नोच कर अपने शरीर पर सोने की फूल-पंखुरियाँ बनवानी हैं!

उसकी सास के तो रंग-ढंग ही बदल गये। अपने निजी घर मे आते ही उसने अपना व्यवहार ही बदल लिया। वह चाँदा के पीहरवालों को भी हिकारत की निगाह से देखने लगी। यहाँ तक वह चाँदा को भी बात-बात पर ताने देने लगी कि उसके पीहरवाले तो गँवार-उजड्ड हैं। पास मे बिठा भी लें तो शर्म आती है।

जब सास का यह रवैया बढ़ा तो एक दिन चाँदा ने खाना नहीं खाया। घर मे हंगामा हो गया। नारायण ने सास-बहू के बीच मे सुलह करायी

जायेगा ।"

"आप एक बार माँ से कहकर तो देखिए ।"

नारायण ने स्पष्ट शब्दों मे कहा, "मुझे तो अभी इस घर मे रहना है। सुनते ही माँ भडक उठेगी !"

नारायण के चेहरे पर आतंक-सा फैल गया। वह फिर बोला, "जो अनहोनी है, वह होनी नही हो सकती। अरे ! तुझे तो आज प्रसन्नता में नाचना चाहिए।"

चाँदा की आँखे भर आयी।

नारायण ने कलकत्ता मे काफी रुपये बचाये थे। पूँजीपति बनने की लालसा उसकी तीव्र हो गयी थी और एक अच्छे व्यापारी की तरह उसमे निर्ममता और तटस्थता जन्म ले रही थी।

नारायण सिर को झटका देकर बोला, "तू सफा गैली (पागल) है। यदि ऐसी बातें करेगी तो तुझे लोग बाणिये की लुगाई भी नही मानेंगे।···बाणिये की लुगाई के शरीर पर सेर-डेढ़-सेर सोना न हो तो बाणिया की लुगाई लगती ही नही।·· अरे ! अब ही तो गाडी पटरी पर आयी है ! तुझे विश्वास नही होगा पर मैं थोड़े ही बरसो मे अच्छे-अच्छे धन्ना सेठों को पीछे धकेल दूंगा। तेरे हवेली होगी, रथ होगा, बग्गी और इक्का होगे, ठाकर पहरा लगायेंगे। दो-दो चार-चार आदमणें (दासियाँ) काम करेंगी। ·और माँ के बाद तुझे लोग चाँदा सेठानी कहेंगे !···जी छोटा मत कर।"

"नही · नही ढोल कँवरजी नही, मैं आपके बिना इस सेज पर तडप-तड़प कर रात बिताती हूँ। दिन को हाड-तोड़ मेहनत मे डुबो देती हूँ। मेरी भूख और तिस मर जाती है। आप लुगाई के भीतर की आग का अहसास नही कर सकते।"

छत पर कोचरी कचर-कचर बोल उठी। कोचरी की शक्ल उल्लू से मिलती-जुलती होती है।

नारायण ने उसे उड़ा दिया।

फिर शांति छा गयी !

नारायण ने फिर कहा, "सुन, मैं तेरे लिए दो सौ तोला सोना लाया

हूँ। तेरे लिए माँ इतने अच्छे गहने बनवाएँगी, तू गवरजा लगेगी। तुझ मैं सोने से पीली कर दूंगा।"

चाँदा को लगा कि उसके आसपास की चादनी पीली पड़ गयी है। रागात्मक सम्बन्धों का एक-एक रेशा टूट रहा है। धीरे-धीरे उसकी प्रेम धडकनें सोने-चाँदी के गहनो की खनक मे डूब जायेंगी।

वह सुबक पड़ी।

नारायण ने उसे अपने सीने से चिपका कर कहा, "तू साँचेली (सचमुच) बाणिये की बेटी नही है। बाणिये की असली बेटी को तो धन से ही प्रेम होता है। दो सौ तोला सोने का नाम सुनते ही वह खुशी में झूम जाती है और तू बसका भर रही है। इस बार कलकत्ते से आऊँगा तब तेरे लिए मोतियों का हार बनाकर लाऊँगा।"

"आने के पहले ही जाने की बात शुरू कर दी है ?" चाँदा ने तिक्त स्वर मे कहा।

"इसमें झूठ क्यों बोलूं ? जाना तो पडेगा ही। पिताजी के श्राद्ध तीन माह बाद है। महाभोज करूंगा। 'साला' के सारे गुरुओं को खिलाऊँगा। स्त्री, पुरुष और बच्चे ! माँ की बडी इच्छा है।"

चाँदा का मन बुझ गया। वह मुर्दा-सी बन गयी।

☐

☐

चाँदा को लगने लगा कि उसे सारी उम्र में अधिकांश पति-विछोह मे तिल-तिल जलना है। उसे हृदय की समस्त भाव-पंखुरियों को नोच कर अपने शरीर पर सोने की फूल-पंखुरियाँ बनवानी हैं !

उसकी सास के तो रंग-ढंग ही बदल गये। अपने निजी घर मे आते ही उसने अपना व्यवहार ही बदल लिया। वह चाँदा के पीहरवालो को भी हिकारत की निगाह से देखने लगी। यहाँ तक वह चाँदा को भी बात-बात पर ताने देने लगी कि उसके पीहरवाले तो गँवार-उजड्ड हैं। पास मे बिठा भी ले तो शर्म आती है।

जब सास का यह रवैया बढा तो एक दिन चाँदा ने खाना नहीं खाया। घर में हंगामा हो गया। नारायण ने सास-बहू के बीच मे सुलह करायी

और पहली बार चाँदा अपनी सास से बोली ।

स्वयं नारायण ने कहा, "माँ ! पैसे का गर्व नहीं करना चाहिए । बहू लायी तो तू माँग कर ही ।" भगवान ने हमे दो पैसे दे दिये तो हम ऊँचे बोल बोलने लगे । प्रभु सबकी नाक पर बैठा रहता है । ऊँचे बोल बोलने वाले का गर्व एक पल मे खत्म कर देता है ।"

जमनी जैसे भीतर से भयभीत हो गयी । आस्तिक तो वह थी ही । भगवान किसी का गर्व नही रखता, यह भी जानती थी ।

उसे अपनी भूल का अहसास हुआ और उसका चेहरा पवित्र कोमल उल्लास की परत से ढँक गया ।

"और माँ आज से मैं आपकी अपनी बहू को आपसे बोलने का हुक्म देता हूँ । घर मे दो प्राणी रहे और वे भी एक-दूसरे से न बोलें, तो उनका समय कैसे गुजरेगा ?"

"तेरी बहू ही बोलती नही है ।"

"अब बोलेगी ।"

और सास-बहू के बीच उस दिन सवाद स्थापित हो गया ।

चाँदा को लगने लगा कि उसे यदि जिंदा रहना है तो उसे आज की सारी अच्छी-बुरी स्थितियों से समझौता करना पड़ेगा । सास से लड़कर तो वह सुख की साँस भी नही ले सकती । हर बेटा अपनी माँ का ही पक्ष लेगा चाहे माँ अन्यायी ही क्यों न हो ? वह समझौता करने लगी । वह अपने आपको परिस्थितियों के अनुसार ढालने लगी ।

□

□

बाप का श्राद्ध आ गया ।

एक कोटड़ी मे महाभोज किया गया । कुटवा लड्डू व बेसन का चूरमा, साँगरी-मै का साग और भुजिया !

सारे गुर-गुरियाणी आये थे । कोटणी के दीवारों पर चीलें, गिद्ध, घुग्घू और कौवे बैठे थे । कोटडी के बाहर साँसी, भँगिने और अन्य माँगने वाली जातियाँ बैठी थी । प्रोल के दरवाजे के पास जो पाटा बिछा था—उस पर ओझा-छँगाणियो के पंच बैठे थे । दो-चार सेठ भी पगड़ियाँ व

अचकनें पहने बैठे थे। नारायण का ससुर भी आया था।

भोज खत्म हो गया।

इससे नारायण की प्रतिष्ठा सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से बढ़ी।

अब नारायण जाने का कार्यक्रम बनाने लगा।

आखिर वह दिन आ गया।

नारायण ने महसूस किया कि चाँदा में काफी परिवर्तन आ गये हैं। अब वह उसके जाने के अवसर पर बहुत अधिक झक्-झक् और बक-बक नहीं कर रही है।

इससे उसे संतोष हुआ।

जाने से पूर्व की रात—

"कल मैं वहीर (रवाना) हो जाऊँगा।"

"भगवान आपकी यात्रा सफल करें।" चाँदा ने उसके हाथ पर अपना हाथ रखकर कहा, "बस इस बार अपने शरीर का ज्यादा ध्यान रखना। आप काफी थक गये हैं।"

"रखूँगा।" नारायण ने उसे गौर से देखा।

लालटेन का तेज प्रकाश था।

"चिट्ठी-पत्री बराबर देना।"

"ठीक है।" नारायण ने उसके हाथ को दबा कर कहा, "एक बात कहूँ।"

"कहिए।"

"तू है पक्की बाणिये की बेटी। एकदम समझ गयी कि बाणिये की बेटी को कैसे जीना चाहिए? आजकल माँ भी तेरी बड़ी तारीफ करती है। कह रही थी कि बहू में धीरे-धीरे सेठानियोंवाले ठसके आ रहे हैं।

वह अचानक उदास हो गयी। चाँदा को लगा कि ये लोग उसके भीतर की सच्चाई को नहीं समझ रहे हैं। इन्हें क्या मालूम कि चाँदा ने एक लबादा ओढ़ रखा है—सुख से जीने के लिए समझौतों का लबादा।

"चुप क्यों है?" नारायण ने फिर पूछा।

चाँदा चौंक पड़ी। उसने कहा, "असल में बात यह है कि जीना है तो हिसाब से ही जीना पड़ेगा। बिना हिसाब के जीने में कोई सार्थकता

नही है ।"

"तू सही कहती है ।" नारायण ने कहा, "मैं तुम्हे बताऊँ मैं अकेला ही नही, सैंकडो लोगों की यही जिंदगी है। मिनख अपना घर-परिवार, गाँव-शहर एक पल के लिए भी छोड़ना नही चाहता पर यह पेट आदमी को कहाँ-कहाँ धक्के खिलाता है, यह ईश्वर ही जानता है। इस उजाड और सूखी धरती पर आदमी क्या करके जीए ? भगवान बरखा करे तो खेती हो।···केवल पशु-पालन और छोटे-छोटे कामों से बामण, बाणिया, राजपूत और भगी-चमार कैसे पेट भर सकते हैं ? आदमी को खाने को दो रोटी, तन ढकने को कपड़े और रहने को एक छोटा-सा घर तो चाहिए ही ? पर इस भूखी-प्यासी धोरों की धरती पर यह सब कहाँ ? आदमी रोटी की तलाश और उसके साधनों को ढूंढने मे ही अपने आपको नष्ट कर देता है। कितना कठिन जीवन है ? दस-बीस हाथ के नीचे पानी पानेवालो को क्या पता कि यहाँ तीन-तीन सौ गज नीचे पानी मिलता है। ···समन्दर के पास रहने वाला यदि हमारा रेत का समन्दर देखे तो आँखें फट जाएँ। तू समझती है कि मैं तुझसे दूर रहना चाहता हूँ···नही,··· मेरी मनमोवणी नही, भरिये जोबन में तुझे बिछोने पर छिपकली की कटी पूँछ की भाँति तडपने के लिए मैं नही छोडना चाहता। मेरी मजबूरी है। इस सामाजिक ढांचे मे जीने के लिए सीने पर पत्थर रखकर समृद्धि की लडाई लडनी पडती है। ··मैं जानता हूँ—रुपया शरीर की आग नही बुझा सकता।···हीरे-मोती और सोना-चाँदी रूप जोबन और गुजरे वक्त को वापस नही ला सकते।···पर मैं करूँ भी क्या ? मंडक की तरह जीने से कोई लाभ नही।"

पल भर का सन्नाटा पसर गया।

सहसा जैसे कोई बात याद करके नारायण ने पूछा, "आज दोपहर मे खाना खाते समय तुम्हे उल्टी कैसे हो गयी थी।"

चाँदा ने नारायण की ओर देखा। फिर अपनी हथेलियो मे मुँह छुपा लिया।

"अरे! बोलती क्यों नही ?" वह जैसे समझकर नासमझी कर रहा था।

"....मुझे अन्न की बास (गंध) आने लगी है।"

"सच।"

और नारायण मारे खुशी में उसे उठाकर चक्कर काटने लगा।

□
□

जाने के पहले नारायण ने चाँदा से वायदा किया था कि वह पुत्र जन्म के अवसर पर जरूर आयेगा।

ठीक नौ माह और तीन दिन होने पर चाँदा ने बेटे को जन्म दिया। हालाँकि पहला प्रसव रीत के हिसाब से पीहर में होना चाहिए था पर सास जमनी ने चाँदा के बाप के प्रस्ताव को नही माना।

जमनी अब सेठनी कहलाने लगी थी। पैसा आने पर उसका व्यवहार-वर्ताव बदल गया था। चांदा ने स्वय विनती की थी, "बाईजी! मुझे पीहर जाने दीजिए, पहली सुवाड (प्रसव) है। यदि मैं नही जाऊँगी तो मेरे गरीब बाप की पगडी उछलेगी।"

"नही, मैं उस गाँवडे में तुझे नही भेज सकती। फिर तेरे बाप की स्थिति ही क्या है! वे अपना पेट तो भर नही सकते।"

चाँदा ने नाराज स्वर मे कहा, "बाईजी! आपकी होड तो वे कर नहीं सकते पर दो कौर जरूर खिला देंगे। रीत का रायता तो वे करेंगे ही।"

जमनी सेठानी ने साफ इन्कार कर दिया, "सुन बनिणी, मेरे घर मे तो यदि बेटा होगा तो नारायण के बाद होगा। नारायण के पैदा होने पर जो सोवन-थाल बजा है, वह प्रभु ने चाहा तो अब फिर बजेगा। ऐसी स्थिति मे मैं तुम्हें वहाँ नही भेज सकती। यहाँ दाई से लेकर बाई तक की व्यवस्था है।"

"मैं आपकी बात तो नही टाल सकती पर यदि आप पीहर भेज दे तो ठीक रहता!"

"नही बीनणी, क्यों उन पर बोझ बन रही हो। एक सुवाड मे क्या नही खर्च होता!"

"थोड़ी-सी लोक व्यवहार की बात है।"

"अरी यहाँ तुझे जो सुख मिलेगा, वहाँ वैसा थोड़े ही मिलेगा।"

और चाँदा ने पुत्र को बीकानेर में ही जन्म दिया।

जमनी सेठानी ने तीन दिनों तक तो सोवन-थाल बजाया। ढोलनियों को गँवाया, बधाइयाँ बाँटी।

पंडित को बुलाकर जन्म-पत्री बनवायी। पंडित ने कहा, "छोरा बड़ा ही भाग्यशाली है। बड़ा ही पैसेवाला बनेगा।"

सेठानी ने पूछा, "मासवा कब है!"

"चालीस दिन बाद।"

"नाम क्या रखें?"

" 'द' आखर पर नाम पड़ गये—दम्मू और दामोदर।"

सेठानी ने तुरन्त एक चिट्ठी डलवा दी।

पर नारायण नहीं आया। उसने साफ-साफ लिख दिया कि उसने दो तीन नई एजेंसियाँ ले ली हैं अतः नहीं आ सकता।

चाँदा को बड़ी वेदना हुई। उसे लगा कि उसका पति धन का कीड़ा होता जा रहा है। धन · धन···धन···! इसके सिवाय उसे कोई दूसरी बात याद ही नहीं रहती! उसे दो-पक्तियाँ याद हो आयी—पैसा मेरा परमेश्वर मैं पैसे का दास! ·

चाँदा के गरीब माँ-बाप ने 'मासवे' पर अपनी ओर से खरी कनार के धोती ओढ़ने और दोहिते के कपड़े बनवाये। ··सास को भी एक धोती दी।

गनीमत समझिए कि जमनी सेठानी ने वे कपड़े रख लिये।

समय बीतता गया।

पूरे पाँच साल फिर बीत गये।

इस बीच नारायण ने अनाप-सनाप रुपया कमाया। बीकानेर में हवेली बन गयी, कोटड़ी हो गयी, रथ, नौकर चाकर, आदमणें और दान-खाना खुल गया।

तब सारे व्यापारियों के हैड ऑफिस याने दानखाने बीकानेर में ही होते थे। इससे उनको इन्कमटैक्स नहीं भरना पड़ता था।

अहिस्ता-अहिस्ता नारायण बड़ा सेठ बन गया। उसने अपने हम-

राहियों को बहुत पीछे छोड़ दिया। इसका एक कारण और था। नारायण ने कलकत्ता जाते ही अंग्रेजी बोलनी सीख ली। वह इससे विदेशियों से सम्पर्क बढ़ाने लगा और बंगाली जमीदार से एक बाड़ी (मकान) भी खरीद ली।

जमनी सेठानी का ठाटबाठ ही न्यारा था। रथ, बग्गी, इक्का तीन-तीन सवारियाँ। हाथों में आठ तोले सोने की चूड़ियाँ, कमर में पचास तोले का करदोंड़ा (करधनी)।

हवेली से बाहर निकले तो सवारी तैयार। जमीन पर पांव रखना बन्द!

पर जमनी के भाग्य मे ज्यादा सुख नही लिखा था। प्रारब्ध की बात कहिए या प्रकृति के नियम की, एक दिन जमनी सेठानी को चक्कर आया और धडाम से गिर पडी।

गिरी तो ऐसी गिरी कि फिर वापस नही उठी। सदा-सदा के लिए परलोक सिधार गयी।

तब एक पल की फुर्सत न होनेवाले नारायण को बीकानेर आना पडा। उसने अपनी मां के पीछे *'तीनघड़ा'* की। सारे ब्राह्मणों को सीरा (हलवा) दाल और चावल का भोज दिया। एक रुपया माँ के पीछे दक्षिणा की। सारे शहर में नारायण की वाह-वाह हुई और वह विख्यात सेठ हो गया।

नारायण ने अपने बेटे दामोदर को पहली बार देखा। वह लगभग पाँच-साढे पाँच साल का हो गया था। जब दामोदर को यह बताया गया कि यह तुम्हारा बाप है तो उसने एक बार तो कह दिया कि नही। मेरा कोई बाप नही है।"

दामोदर ने हँसकर कहा, "नही साडेसर, मैं ही तेरा बाप हूँ।"

"चाँदा की आँखें अपार वेदना से भर आयी। उसके लिए यह कितनी पीड़ादायक त्रासदी थी। उसने सोचा कि पृथ्वी पर उस बाप के लिए कितनी लज्जा की बात है जिसको उसका बेटा ही नही पहचानता हो।

पर दामोदर अपने बेटे को तरह-तरह की बातों से बहलाता रहा। उसने पूछा, "पढ़ते हो!"

"हाँ सोवनिया महाराजा के पास।"

"अँग्रेजी पढ़ना-लिखना जरूर सीखना।". फिर उसने चाँदा की ओर देखकर कहा, "दम्मू की बाई! इस बार मैं आऊँगा तो इसे भी अपने साथ ले जाऊँगा।"

"क्यो ?"

"वहाँ इसे लिखाई-पढाई मे हुशियार करूँगा। व्यापार करना सिखाऊँगा।"

चाँदा ने नाक-भौं सिकोड़ कर कहा, "अरे वाह! पैदा ही नही हुआ और कमाने की बातें होने लगी। इसे कुछ दिन तो हँसने-खेलने दीजिए।"

नारायण ने कहा, "अरी बावली! वाणिया का बेटा तो गर्भ से ही कमाना सीखकर पैदा होता है बस, उसे तो थोड़ा-सा रास्ता दिखाना पडता है। फिर तो वह सारे रास्ते खुद बना लेता है।"

नारायण दो महीना रहा। जाने के पहले उसने चाँदा को माँ वाला सोने का करदोंडा (करधनी) पहना कर कहा, "आज से माँ की जगह तू सेठानी हो गयी है। चाँदा सेठानी। इस हवेली और सेठ नारायणदास दम्माणी की बहू-चाँदा सेठानी।"

चाँदा सेठानी को लगा कि इस पदवी का अहसास होते ही उसमे कुछ ऐसा प्रवेश कर रहा है, जो उसके अनुभवो से बाहर था। नारायण के जाने का दिन आ गया।

चाँदा सेठानी को इस बार जालीदार झरोखे से अपने पति को विदा होते हुए नही देखना पड़ा। इस बार वह स्वय आँगन मे खड़ी थी। उसके मामा की सुहागन बेटी नरबदा नारायण को विदाई का टीका करने के लिए आयी थी।

नारायण ने पगड़ी बाँध रखी थी। पगड़ी का पिछला पेच खुला था। ललाट पर कुकम चावल का टीका। हाथ मे मोली! कमर मे दुपट्टा।

वह जब बग्गी मे बैठा तो उसका बेटा दम्मू ठेसण (स्टेशन) जाने का हठ करने लगा। मुनीम शिवप्रताप ने उसे साथ ले लिया।

नारायण के हाथ मे लोटा व नारियल था।

दरवाजे के बाहर भी नरबदा ने 'समेला' दिया। नारायण ने अपनी

भगिन को एक रुपया दिया। भंगिन ने हृदय से उसे आशीर्वाद दिया—"खूब फलो-फूलो अन्नदाता, एक नहीं सौ हवेलियाँ बनाओ। आप घी, दूध खाकर अपने भंगी-भंगिन को रूखी-सूखी दें।"

नारायण चला गया।

चाँदा को इस बार अधिक तनावों का सामना नहीं करना पड़ा। उसे इस बात का ज्ञान हो गया था कि उसके जीवन की यही सच्ची नियति है।

☐

☐

इस बार फिर नारायण पाँच साल के बाद आया। अब चाँदा सेठानी को उसका आना-जाना अधिक कष्टदायक नहीं लगता था। वह घर के काम धंधों मे व्यस्त रहती थी। सब पर अपना प्रशासन चलाती थी। बड़ा तामझाम हो गया था।

पर जब नारायण ने दामोदर को ले जाने की बात कही तब चाँदा को अव्यक्त व्यथा का अनुभव हुआ।

उसने नारायण को कहा, "नहीं दम्मू के भाईजी! अभी दम्मू छोटा है।"

"छोटा कैसे? मैं तो दस साल की उम्र मे काम करने लगा था। फिर अभी से इसकी रुचि में व्यापार के बीज न पड़े तो पेड़ कैसे उगेगा?···

···बावली! बिच्छू के जाये का क्या छोटा और क्या मोटा? डंक तो वह मार ही सकता है। बाणिया का बेटा व्यापार मे नहीं घुसेगा तो उसकी बारीकियाँ कैसे जानेगा?"

चाँदा झल्ला पड़ी, "धन···धन···धन···कितना धन कमाओगे?···"

नारायण ने गम्भीर होकर दृढ़-स्वर में कहा, "जितना जीवन मे कमा सकता हूँ।"

"इसकी कोई थाह।"

"कमाने की कोई थाह नहीं, कोई सीमा नहीं, कोई अन्त नहीं। दम्मू की धाई, यह पेट है न, रोटियों से भर सकता है पर धन से नहीं। तो और भूख बढ़ती है।"

कहा, "मुझे अपने संग ले चलिए, मेरा आपके बिना मन नहीं लगेगा। मैं तड़प-तड़प कर मर जाऊँगी।"

दामोदर ने अपने धोती के पहलू से उसके आँसू पोंछे और उसे सीने से लगा कर कहा, "छोड़ना तो मै भी तुझे नही चाहता हूँ पर भाईजी और बाईजी की स्वीकृति के बिना तो हम कुछ नही कर सकते। तू शान्ति रख, मैं धीरे-धीरे भाईजी को समझा लूँगा तो फिर सारी बातें सही हो जाएँगी।

सुलोचना मुँह छिपा कर रो पडी। उसकी अव्यक्त मनोव्यथा का कोई पार नही था। दामोदर का हृदय भी वेदनापूरित हो गया।

उसने उसे आलिंगन मे बाँध लिया था। उसके अश्रु-बिंदुओं को अपने होंठ से पोंछने लगा।

नारायण ने आंगन से कहा, "दम्मू! नीचे आ जा, गाड़ी का वक्त हो रहा है।"

एक बार दामोदर ने उसे सीने मे जोर से भींचा, चुम्बन लिया और धड़ाधड़ नीचे उतर पड़ा।

□
□

समय बीतता जा रहा था।

सुलोचना सावन मे अपने पीहर चली गयी। एक बार कराची भी हो आयी। उसका पति-वियोगी दुखी मन अपने प्राणप्रिये से मिलने के लिए तड़पने लगा। अब उसकी दासी और अन्तरंग सहेली थी नो रामली।

रामली विधवा थी।

गेहुएँ रंग की हृष्ट-पुष्ट!

उसने सुलोचना की आत्म-पीडा को समझा। बोली, "यह अन्याय है, आप पर सरासर अत्याचार है। बताइए, भरी जवानी मे कोई खोटे रास्ते पर चल पडे तो?"

सुलोचना ने रामली को तीखी निगाह से देखा और कहा, "क्यों भरी जवानी मे लुगाई खोटे रस्ते पर चलें?...जवानी के सिवाय क्या कोई और लक्ष्य, उद्देश्य नही है। केवल मर्द का सुख ही पृथ्वी पर अकेला सुख नही

है—जब-जब मन में पाप उठे तब-तब भगवान को याद करना चाहिए।···

"कब तक?"

"जब तक पति प्राप्त न हो जाए। मैं स्वयं पति को पाने के लिए लड़ाई लड़ूंगी। तुझे बता दूं – एक दिन मैं कलकत्ता जाऊँगी ही। पर खोटे और पाप के रास्ते पर नही चलूंगी।

कासी ने उसका यह संवाद सुना तो भीतर आकर बोली, "वाह बहू वाह! खानदानी लड़की के ये ही लक्षण होते हैं। वह मर जाती है पर अपना 'सत' नही छोडती! सतियो के बल पर ही यह पृथ्वी शेषनाग पर ठहरी हुई है। मैं भी तो लुगाई जात हूँ। उम्र गल गयी है मेरी। पाप के नाम से डर लगता है।"

कासी चली गयी। कासी पिछले कई बरसो से चाँदा सेठानी की खास नौकरानी है! इस हवेली में उसका खास मान-सम्मान है।

गमली ने आदर-भाव से सुलोचना को देखा और कहा, "लुगाई जात पर बडे ही अन्याय होते हैं।

"मैं मानती हूँ, विशेषतः मारवाड़ी लुगाइयो पर। यह अन्याय भी अनोखा है विशेषतः बाणियों की लुगाइयों के संदर्भ मे। उनके तन को धन से धीरे-धीरे थूर (दफन) दिया जाता है और मन को दिन-प्रतिदिन नंगा कर दिया जाता है। जरूरत है—तन और मन दोनों तृप्त करने की।··· हृदय के भीतर जो कुछ भी अधूरापन है, उसे पूरा करने की पर ऐसा तभी होगा जब लुगाई इस परम्परा और संस्कारों से जकड़े हुए घर-परिवार और समाज को बदलेगी।···कुछ करना चाहिए और मैं करूँगी।"

मगर तीन साल तक वह अपनी सास चाँदा सेठानी की आज्ञाओं को अबोध बालक की तरह मानती रही। चाँदा सेठानी के प्रखर व्यक्तित्व और भारी भरकम शब्दों के सामने कभी-कभी पढ़ी-लिखी सुलोचना को अपने बौनेपन का अहसास होता था। शायद पद-प्रतिष्ठा के कारण उसमें एक संस्कार जनित हीनता जन्म आयी थी। शायद अनजाने मे एक भय बैठ गया था कि सास सास होती है।

चाँदा सेठानी उसे अपने से बोलने नही देती थी। लम्बा घूंघट निकल-वाती थी। घर से बाहर खास-खास अवसरों, तीज-त्यौहारों, और

पर ही जाने देती थी।

पैसों की बढ़ोत्तरी के साथ-साथ प्रतिबन्ध भी बढ़ रहे थे और खोखला बड़प्पन भी हाथ-पाँव पसार रहा था।

चाँदा सेठानी स्वयं सुबह-शाम मन्दिर दर्शन करने जाती थी। धर्म-पुण्य करती थी। उसका विश्वास था कि धर्म की जड सदा हरि होती है।

उसके पास कई छोटे-छोटे घरानों की लुगाइयाँ आती रहती थी। कोई कहती—मेरा बेटा कलकत्ता है, कोई समाचार नही। कोई कहती—मेरे बेटे को काम मिला कि नही•••?

चाँदा सेठानी अपने मुनीम से कहकर उनकी समस्याओ का निवारण कराया करती थी! उसमें परोपकार की प्रवृत्ति बढ रही थी। अब वह कभी-कभी एकात के क्षणों मे बैठकर सोचा करती थी कि उसकी उद्दाम लालसाएँ, यौवनोन्माद, पिपासाएँ सबकी सब मरती जा रही है। सब पर एक तरह का मुर्दापन छाता जा रहा है जो समय के कारण होता है। सारा जीवन निर्जीव पत्थरों और सोने-चाँदी की चमक-दमक में खो गया। हवेली की रोशनियाँ चढ़ती गयी और मन के दीप बुझते रहे। तृष्णा-सरोवर सूखने लगे! लम्बे वैवाहिक जीवन मे पिया मिलन के गिनती के दिन!•••शायद हम मारवाडी लुगाइयों की यही नियति है।

एक दिन सुलोचना ने चाँदा सेठानी को कहा, "माँजी! कभी-कभी मन इतना बेचैन हो जाता है कि शांत ही नही होता! पाठ-पूजा भी करती हूँ पर मन तो उड़ता-उड़ता न जाने कहाँ पहुँच जाता है।"

चाँदा सेठानी ने सुलोचना की ओर अभिप्राय भरी नजर से देखा। एक शूल-सी तीक्ष्णता थी उसमें। वह स्वयं अपने आप पर आश्चर्य करने लगी। आखिर वह अपनी सास जैसी सास क्यों हो गयी है। जो कष्ट, वियोग व पीडाएँ भोगी हैं उन्हें वह अपनी बहू को क्यों भोगने दे रही हैं। क्यो?•••क्यों••क्यों? तब उसके भीतर से आवाज आयी—वह अब चाँदा सेठानी है ••चाँदा सेठानी•••और सेठानियो के ठसके और ही होते हैं।

सुलोचना सहम गयी। सिर झुका लिया।

चाँदा सेठानी ने कहा, "कल से सुबह उठ कर चक्की चलाना और दिन भर काम करती रहना। मन और तन दोनों इतने थक जायेंगे कि उड़ना

तो दूर रहा, चल भी नही पायेंगे। समझी।"

सुलोचना ने उससे नजर न मिला कर कहा, "मैं चाहती हूँ, यदि आप आज्ञा दें तो मैं सुबह-शाम लक्ष्मीनाथजी के मंदिर जा आऊँ?"

"नही।" चाँदा ने उसे साफ मना करते हुए कहा, "अभी मंदिर जाने की उम्र नही हुई है! अभी घर-गृहस्थी संभालने की उम्र है। उसे संभालो। बड़े घरों की बहुएँ अपने रुआब से रहती हैं।

सास ने स्पष्ट मना कर दिया था।

सुलोचना अपमान मे तिलमिला उठी। एक बार उसकी इच्छा चिल्लाने की हुई पर उसे लगा कि किसी प्रेतात्मा ने उसका गला दबोच लिया है। उसके दृग भर आये। लम्बे घूँघट मे उन उतरे-उदास चेहरे और भरी-भरी आँखों को चाँदा सेठानी नही देख पायी।

चांदा फिर उपदेशात्मक स्वर मे बोली, "हर चीज का वक्त होता है। वक्त के पहले हर चीज अनुचित लगती है।··· इसलिए सही वक्त का इन्तजार करना चाहिए।"

सुलोचना चली गयी।

कासी ने आकर कहा, "सेठाणीजी, गूँगिये की माँ आपसे मिलने आयी है।"

"उसे यहाँ ले आ।"

थोड़ी देर में गूँगिये की माँ लालर (काला ओढ़ना) और उस पर लांकार (लाल शाल) ओढे आयी। काले रंग की तीखे नाक-नक्शेवाली गूँगिये की माँ ने आते ही चाँदा सेठानी को जै श्रीकृष्ण कहा और बैठ गयी।

"क्या बात है गूँगिये की माँ।"

"क्या बताऊँ सेठाणीजी?" वह दुख से सिर हिला कर बोली, "भाग ही फूटे हुए हैं। पहले भांजी का पति मर गया, अब मामे की बेटी···और आपको सब पता ही है कि मेरे 'वे' तो कचौलियाँ बेचते हैं और बेटा गूँगा है। चारो तरफ कोई भी सुख नजर नही आता। अब बड़ी बेटी की सुवाड़ आने वाली है···बस, आपको क्या बताऊँ···जच्चा को पाँच सेर घी खिलाने की भी औकात नही है! आपकी शरण आयी हूँ।"

गूँगिये की माँ चाँदा सेठानी के घर आया-जाया करती थी। काम-धंधा करती थी। चाँदा सेठानी भी समय-समय पर उसकी मदद किया करती थी।

गूँगिये की माँ फिर याचना-भरे स्वर मे बोली, "आपके पास बडी आशा लेकर आयी हूँ। दूसरा द्वार भी तो नही है। आदमी माथा तो उसी देवता के आगे टेकेगा जो उसकी विनती सुनता है।

चाँदा ने उपदेशात्मक स्वर मे कहा, "अरी गूँगिया की माँ! कौन किसको देता-लेता है, सब प्रभु की माया है। वह न जाने किस-किस के भाग का देता है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ।"

गूँगिये की माँ ने झट से कहा, "देना ही बहुत दोरा (कठिन) है। देते समय आदमी की छाती फटती है।"

चाँदा सेठानी ने एक पल सोचा, फिर कासी को बुला कर कहा, "कासी, जाकर मुनीमजी ने कह दे कि गूँगिये की माँ को पच्चीस रुपये दे दें। बामणी की आशीष ही लगेगी।"

गूँगिये की माँ उठती हुई बोली, "आशीष थोड़ी नही घणी लगेगी। भगवान आपको दिन दूना और रात चौगुना देगा। आपके घर मे रुपयों की बरखा होगी।"

वह चली गयी—कासी के साथ।

चाँदा सेठानी ने एक बार श्रीनाथजी के चित्र की ओर देखकर मन ही मन नमस्कार किया।

□
□

एक और त्रासदी हो गयी।

कलकत्ता में नारायण का अप्रत्याशित देहान्त हो गया। उसे हैजा हो गया था और उपचार के बाद भी उसे नही बचाया जा सका।

समाचार पाकर चाँदा सेठानी पछाड़ खाकर गिर पड़ी। होश में आने पर उसने अपनी चूड़ियाँ, बिंदी और नाक का तिणखा (काँटा) खोल दिया। श्वेत परिधान पहन लिये। सुलोचना अपनी सास का वैधव्य रूप देख कर फूट-फूट कर रो पड़ी।

कोहराम मच गया। नाते-रिश्तेदार मर्द सिर पर पीतिये बाँध कर आने लगे। लुगाइयाँ लालर या काली-नीली चौकड़ी का ओढ़ना ओढ़ कर जमा होने लगी।

नारायण की मौत का समाचार औपचारिक रूप से सुनवाने के लिए 'नानाणा-दादाणा' के समस्त सदस्यों को कुएँ पर जाकर स्नान करना था। वे सब गये और स्नान किया।

चाँदा ने अपने पीहरवालो को भी समाचार भिजवाए। अब उसके पीहर वालों की भी आर्थिक स्थिति ठीक हो गयी थी। चाँदा का भाई गीगला भी कलकत्ता अपने बहनोई के पास चला गया था।

पाँचवे दिन दामोदर भदर (मुडन) हुआ बीकानेर आ गया था। उसके साथ उसका साला गीगला था। दामोदर दहाड़ मार-मार कर रो रहा था।

हवेली के आँगन मे आकर वह पसर गया। स्वजन-परिजनो ने उसे धैर्य बँधाया।

चाँदा की वेदना का पार नही।

एक औरत समवेदना प्रकट करके कह रही थी, "लुगाई के सारे सुख तो धणी के पीछे हैं। धणी बिना जीने मे क्या भदरक (सार्थकता) है।"

"सारे संसार में अँधेरा हो जाता है।"

"पहनना-ओढना सब खत्म।"

तरह-तरह की बातें !

बारहवें दिन दामोदर ने 'लाडू-चूरमा' का 'बारिया' किया। उसमे 'गुर-गुरयाणी' और घर-परिवार के सारे लोगों ने खाना खाया। भांजे व दोहितों को तो दामोदर ने इक्यावन-इक्यावन रुपये भी अपने पिता के पीछे दिये।

चाँदा सेठानी अब घर से बाहर नही निकलती थी। नाते-रिश्तेदार उसका वक्त कटवाने के लिए आते-जाते रहते थे। सुलोचना भी प्रायः उसके साथ रहती थी।

केवल रात को वह दामोदर के पास जाती थी।

एक दिन सुलोचना को मालूम पड़ा कि अब दामोदर वापस कलकत्ता

जाने वाला है तो वह विचलित हो गयी।

रात का समय था।

अब हवेली मे रोशनी थी। पंखे थे। जीवन की नयी-नयी सुविधाएँ बाहर से आयात की जा रही थी। इस देश में हर चीज की जरूरत थी पर अंग्रेज सूई तक बाहर से मँगवाते थे। इस देश में कुछ भी नही बनता था। देश तो विदेशियो के माल की मडी मात्र था।

दामोदर ने जैसे ही मालिये मे प्रवेश किया तो उसे सुलोचना पलग पर सोयी हुई मिली।

उसके हाव-भाव से लग रहा था कि वह काफी चिंतित है।

वह उसके पास बैठ कर उसके हाथ पर हाथ रखकर पूछ बैठा, "क्या बात है ?"

"आप कलकत्ता जा रहे हैं ?"

"इसमे पूछने की क्या बात है। भाईजी ने लम्बा-चौडा कारोबार फैला रखा है। उसे इतने दिन नही सभाल पाया, उससे ही हजारो रुपयों का घाटा हो गया होगा।"

"मुझे भी साथ ले चलिए न ?" उसने विनती की।

वह हैरान होकर बोला, "एक बात है, कभी-कभी तू सयानी समझदार होकर भी टाबर-बुद्धि (बालक-बुद्धि) की बात कर देती है। भाईजी का मरना हुआ है और तू कलकत्ता चलने की बात करती है।...जरा खोपडी को कष्ट दे—सोच कि तुझे तो साल-छह माह तो बाईजी के पास रहना ही चाहिए। क्या तू बाईजी को अकेला छोड देगी जबकि पराये लोग माँ का वक्त कटवाने यहाँ रोज आते है।"

सुलोचना ने उसकी बात का जवाब देते हुए कहा, "तीन साल में तीन महीना...? कैसे कोई अपना समय भरी जवानी में काटे।...इस उम्र में तो ठंडी हवाएँ भी अग्नि की तरह लगती है। सच कहती हूँ कि कभी-कभी तो सारी रात आँखों मे कट जाती है।"

"मैं जानता हूँ और मैंने सोचा भी था कि भाईजी को समझाऊँगा कि वह बहू को बुला ले। भगवान की कृपा से अब तो रहने की जगह भी बहुत है।...पर भाईजी तो हमे छोड़ कर ही चले गये। ऐसे बीमार पड़े कि अच्छे

ही नही हुए।···न कुछ कहा और न कुछ बताया। शायद उनकी आत्मा ने पहले ही कह दिया था कि वे अपनी उम्र से पहले ही चले जायेंगे, इस-लिए उन्होंने मुझे पहले से ही अपने साथ रख लिया। यदि मैं व्यापार सीखा-सिखाया नही होता तो आज जमा-जमाया कारोबार चौपट हो जाता। भगवान सबकी निगाह रखता है।"

सुलोचना ने खोयी-खोयी आँखों से देखा। उन आँखों मे प्रश्न था या उपालंभ यह दामोदर नही जान सका।

मौन दोनो के बीच बैठा था।

सुलोचना ने उसे भगाते हुए कहा, "मैं सासूजी जैसी कोई पद-प्रतिष्ठा और गरिमा नही चाहती।···मुझे सेठाणी बनने की भी कोई चाह नही है, मैं तो आपकी पत्नी रहना चाहती हूँ, केवल अर्धांगिनी! आप ही सोचिए, आधा अग अकेला कैसे जीवित रह सकता है?"

"तू समझती क्यो नही, अभी तेरा ससुर मरा है और अभी तू सास को अकेली छोड कर मेरे साथ जायेगी? लोग ऊट-पटांग बातें नही करेंगे? तुझे लोक-निंदा का भय नही?"

"बातें···प्रतिष्ठा· कुटुम्ब···रक्त-गौरव····रीति-रिवाज धर्म··· मर्यादा···क्या औरत का मूल यही है? क्या उसे इन पीड़ादायक शब्दों से घिर कर आहत जीवन जीना पड़ेगा?"

दामोदर ने झल्ला कर कहा, "मुझे तेरी ये बातें समझ मे नहीं आती। मैं इतना ही जानता हूँ कि अभी तुम्हे यही रहना है।"

"चलो, मैं जैसे-तैसे एक साल गुजार दूँगी फिर···? मैं आपके बिना नही रह सकती। मैं आत्म वंचना के पाप मे अपने मन को अधिक दिन नही जला सकती।"

"तू अभी चुप रह।" दामोदर ने उसे डाँटते हुए कहा, "बेकार का माथा चाट रही है।"

"मैं बेकार का माथा नही चाट रही हूँ। मैं आपको साफ-साफ बता दूँ कि जिस दिन आपने मुझे धोखा दिया, उस दिन मैं कुँआ-खाड कर लूंगी। आप मेरी लाश ही देखेंगे। मुझे बाई जी की तरह दाम्पत्य सुख के चंद सास नहीं लेने है। मुझे सोना-चाँदी हीरे-मोती नही चाहिए। मैं वाणिये की

बेटी जरूर हूँ पर मुझे इन हवेलियों की पत्थरों की दीवारो मे घुट-घुट कर मरने की आदत नही है। मुझे आपका प्रेम, स्पर्श और संग-साथ सभी कुछ चाहिए। सोना-चांदी, रुपये-पैसों को मैं छाती पर रख कर सन्तोष नहीं करूंगी। मुझे नारी का एक सार्थक जीवन चाहिए।"

दामोदर ने उसे फिर झिड़का, "मुझे बेवक्त की मगजपच्ची पसन्द नही।...अभी तो तू शांति धारण करके माँ के विखै (दुख) के दिन कटा। इतना ही कौल करता हूँ कि अवसर आते ही तुझे मैं कलकत्ता ले चलूंगा।'

सुलोचना उससे गहरे अपनेपन से बोली, "जीवन का सुख जीवन को उसके स्वाभाविक रूप मे जीने से है। आप लोगों ने खामाखा एक धारणा बना ली है कि आदमी के पास जितना पैसा होगा, वह आदमी उतना बडा होगा। आदमी बडा अपने कर्मों से होता है। वह कितना धर्म-पुण्य करता है, कितना दान करता है, कितना दूसरों को रोजी-रोटी देता है, उसका यश उतना ही फैलता है। केवल धन ''धन ...धन'' की रट पागलपन है।"

दामोदर उसे झटका देकर उठ गया। बोला, "अब तू उपदेश देना बंद करेगी या मैं ही चला जाऊँ। हद हो गयी।

"अच्छा, अब नही बोलूंगी। बस इतना ही कहूँगी, मैं अकेली नही रहूँगी।"

"अच्छा, मत रहना।"

दामोदर कलकत्ता चला गया।

□

□

चाँदा सेठानी और सुलोचना के बीच एक खाई जन्म ले चुकी थी जो कम की बजाय चौड़ी होती जा रही थी।

उस दिन रामली-कोटडी से देर से आयी। हवेली से कोटड़ी नगर की चारदीवारी के पास थी। कोटड़ी में घोड़े, गायें और बैल बँधते थे।

कोटडी मे दो गूंदी और एक जाल का पेड़ था। समय पर गूंदी मे पीले मोतियों से गूंदिये लगते थे जो काफी मीठे थे। जाल पर सफेद मोतियों से जालिये।

सुलोचना को इन्हें खाने का बड़ा शौक था। उसने रामली को कहा कि वह उन्हें तोड कर जरूर लाये। इस सिलसिले मे रामली को काफी देर हो गयी तो चाँदा सेठानी लाल-पीली हो गयी।

उसने आते ही रामली को आड़े हाथों लिया। ततैया मिर्च की तरह जलते स्वर में बोली, "कहाँ मरी थी रँडारू ! कब घर से गयी और कब घर लौटी है। बता, कहाँ मरी थी इतनी देर ?"

रामली निरपराध होते हुए भी एक अज्ञात अपराध भावना से घिर गयी। वह निष्काम-सी खडी रही। जिस आक्रामक ढंग से चाँदा सेठानी ने उसे कहा, उसने उसे चद पलों के लिए विमूढ कर दिया।

"मुँह मे जवान नही है ?·· बोलती क्यों नही ?" वह फिर भडकी।

रामली ने आहिस्ता से कहा, "कोटडी मैं गूँदियाँ तोड़ने लग गयी थी। बहूजी ने मँगवाए थे।"

"तू क्यों तोड़ने गयी। दूसरे लोग क्या मर गये थे ?"

"आज··· ।"

"मुझे तेरे लक्षण अच्छे नही लगते। तू मेरा काला मुँह कराएगी।··· रामली ! आज तो तुझे मैं छिमा (क्षमा) करती हूँ। आगे से कोटडी मत जाना। मेरे यहाँ रहना है तो सही ढंग से रहो।"

रामली रो पड़ी। वह लपककर चली गयी।

कासी, सेठानी के पास बैठी थी।

बोली, "आपने डाट दिया, चोखा किया। कोटड़ी तीन-तीन गोधें (जवान नौकर) हैं। इसमें दो तो कुँवार है।"

"मैं सब समझती हूँ। जब जवानी जोर मारती है न तो अंधी हो जाती है। राँड सोचती नही कि मैं विधवा हूँ। कहीं उल्टा-सुलटा पाँव पड़ गया तो सात पीढ़ी पर कलंक नही लग जायेगा ?···जरा सोच कासी ! मैं तो सधवा थी, पर कितने संयम, धर्म और सादगी से उम्र गुजारी है। मुझे पराये मर्द को देखने में पाप का अनुभव होता था ! यह···यह चाला-कियाँ करती है।"

उसी समय सुलोचना आ गयी। उसने घूँघट में से उल्टी खडी होकर कहा, "आपने रामली को क्यों डाँटा ? उस बापड़ी का कोई क्सूर

नही था। मैंने उसे गूँदियाँ तोड़ कर लाने को कहा था। आपने उस गरीब को बेकार ही डाँटा। डाँटा सो डाँटा साथ ही लांछन ही लगा दिया।"

सास के मरने के बाद चाँदा मे एक अजीब-सी औरत जन्म ले रही थी। जो हर घड़ी सब पर अपना शासन और आतंक जमाना चाहती थी। उसने यह सोच लिया था कि इस हवेली मे उसके हुक्म के विना पेड़ का पत्ता भी नही हिलाना चाहिए। वह जो भी कह दे वही ब्रह्मवाक्य होना चाहिए। पर सुलोचना को यह स्वीकार नही था। वह इसे नादिर-शाही समझती थी। अन्याय समझती थी। शायद यह पीढ़ियों के बदलाव का संघर्ष और प्रभाव था जो रूढ़ियों को तोड़ना चाहता था!

जब चाँदा ने वहू को रामली की वकालत करते देखा तब वह भड़क उठी, 'तू···तू मुझसे फिर बोलने लगी।"

"नही, मैं आपसे बोलना नही चाहती थी पर मैं अन्याय भी सहन नहीं कर सकती। कसूर मेरा और दण्ड उस गरीब रामली को, यह कहाँ का धर्म है ?"

"मेरे घर का।" चाँदा एकदम तमतमा उठी, "बहू! मैंने तुम्हें हजार बार कह दिया है कि तू मेरे मुंह मत लगा कर, मेरे किसी काम मे दखल मत दिया कर···पर तू मानती नही।"

"फिर आप भी मेरी नौकरानी को कुछ भी न कहा करें।" वह जरा कठोर स्वर मे बोली।

चाँदा को महसूस हुआ कि बहू ने यह वाक्य नही, उसकी पीठ पर बेंत मारा है। वह तड़प कर उठी और उसने कहा, "इस हवेली की एक-एक चीज मेरी है। उस पर मेरा अधिकार है। तू इसे अपने पीहर से दहेज मे नही लायी है। इसकी तनख्वाह तेरा बाप नही चुकाता है। समझी।"

सुलोचना का धैर्य टूट गया। उसने घूंघट हटा दिया। उसकी आकृति पर दुर्दान्त पीडा की परत पसर गयी। गला अवरुद्ध हो गया। बोली, "मेरा बाप तनखा चुका सकता है पर यह हमारे घराने के लिए यह शोभा नही देगा। सेठ नारायणदास दम्माणी की आदमण का रुपया मोहता जी चुकायें यह जग-निंदा की बात होगी।··· फिर आपको मेरे बाप तक नही जाना

चाहिए। मेरा बाप कम नहीं है। कराची में उनके पत्थर तिरते हैं।"

"फिर बाप को कह कर अपने लिये अलग से हवेली बना ले।" चाँदा एकदम नीचे स्तर पर उतर आयी। अनपढ़ तो थी ही, फिर कहीं जीवन का अधूरापन उसे चुभता रहता था। यह अधूरापन उसके भीतर की कोमलता को ग्रसता जा रहा था। उसमें जन्मे अक्खड़पन का भी यही कारण था।

सुलोचना का अह्‌म आहत हो गया। क्रोध ने उसे भी विवेकहीन बना दिया। पीढ़ी का आक्रोश बारूद की तरह भड़क गया। वह भी विषाक्त स्वर में बोली, "मेरा बाप तो हवेली बनाने की भी क्षमता रखता है पर यदि किसी लड़की के बाप ने पहले भी बनवायी हो तो वे भी बनवा देंगे पर आपके लादा बेचनेवाले बाप ने आपको क्या दिया? मेरे बाप ने तो फिर भी सौ तोला सोना और पाँच सेर चाँदी दी है।"

चाँदा सेठानी परास्त हो गयी। उसे लगा कि उसकी बहू ने उसके दोनों गालों पर तड़ातड़ चाँटें मार दिये हैं।

उसे अपनी पद, प्रतिष्ठा, प्रभुत्व और बड़प्पन ध्वस्त होता हुआ लगा।

सुलोचना फिर बोली, "मैं रामली को तनखा दे दूँगी। आप कहें तो मैं घर छोड़ कर कोटड़ी में चली जाऊँ।...मैं इतना अनादर और अत्याचार नहीं सह सकती।"

"मुझे कुत्ती की तरह बोल रही है और दोष भी मुझे दे रही है। आज दामोदर को समाचार दिलाती हूँ।" कहूँगी—सँभाल अपनी इस दो हाथ की जीभ वाली को।...कासी! जा, मुनीम जी को बुला कर ला...।"

सुलोचना रो पड़ी। रोते-रोते बोली, "मेरे बाप ने तो समझा था कि ऊँचे घराने में बेटी जा रही है, सुख की नींद सोयेगी, लम्बे पाँव पसार कर रहेगी, यहाँ तो सुहाग भी मिला तो विरह-पीड़ा देने वाला।"

चाँदा सेठानी ने पत्थर मारा, "कहती क्यों नहीं, इससे तो रँडापा ही चोखा। तेरे जैसी लुगाइयाँ और चाहेंगी क्या?"

कासी ने उठ कर सुलोचना को वहाँ से घसीट कर हटा दिया। वह

बोली, "बहू जी आप तो समझदार हैं, बड़े-छोटे का कायदा समझती हैं। आप तो ओढना मत उतारिए।"

चाँदा सेठानी भी रूआँसी-सी हो गयी। वह बोली नही। मन के आक्रोश और विषमता को दबाने के लिए वह हरे कृष्ण⋯हरे कृष्ण करने लगी।

कासी समझ गयी कि आज जो कुछ भी घटा है, बुरा घटा है। सास के सामने बहू का बोलना कहाँ तक ठीक है, यह वह जानती थी। आज तो हद हो गयी।

कासी अनपढ़ थी पर उसके पास लम्बे जीवन के अनुभवो का भडार था। वह समझ गयी कि दोनों सास-बहू ने अकारण ही इतना महाभारत खडा किया है। बैठी-बैठी करें भी क्या? नही तो इतनी छोटी बात का इतना बडा बतगड बनाने की क्या जरूरत थी?

पर इन्हें समझाए कौन। एक बड़ी सेठानी और दूजी छोटी सेठानी!

कासी तटस्थ रही। उसने सोच लिया कि इस घड़ी मौन रहने मे ही लाभ है।

पर चांदा सेठानी अधिक समय तक हरे कृष्ण नही जप सकी। उसने मुनीम को बुलाकर कहा, "मुनीम जी! दामोदर को समाचार दीजिए कि वह एक बार आ जाए। उसकी बहू मेरे दुख के दिन कटवाने की जगह मेरे हिवडे पर कटारी चला रही है! आज तो वह मुझे तू-तू, मैं-मैं बोल गयी। आप तो समझते हैं कि जो कुछ भी है वह मेरे 'सेठ जी' की माया है। इस माया पर मेरा हक है और मैं अपनी काया को कष्ट दूं मुझसे सहन नही होता।"

मुनीम जी अभी हुई गृह-कलह से अपरिचित थे। वे तो बस समाचार सुनते रहे। इस बात को समझ रहे थे कि जरूर कुछ गडबड़ हुई है।

जब मुनीम जाने लगा तो सेठानी ने कहा, "यह चिट्ठी आज ही चली जानी चाहिए।"

मुनीम ने कहा, "जो हुक्म।"

□
□

तीन दिन बीत गये।

चाँदा सेठानी और सुलोचना के बीच जो तनाव पैदा हुआ था, वह पूर्ववत बना रहा। दोनो के बीच संवाद की स्थिति नही थी। चाँदा सेठानी ने भरपूर यह अभिनय किया कि वह सामान्य है। इसलिए उसने अपनी सारी दिनचर्या मे कोई व्यवधान नही आने दिया पर भीतर-ही-भीतर उसमें छोटे-छोटे कई ज्वालामुखी भडक रहे थे। उसमे उसकी अस्मिता तक दग्ध हो रही थी।

सुलोचना ने चौके मे खाना नही खाया। वह बाहर से कचौड़ी, पकौड़ी और मिठाई मँगवा कर खा रही थी। वैसे भी उसे खीचिया, पापड़ और भुजिया साथ-साथ खाने का शौक था, वह इस शौक को इस विषम स्थिति मे पूरा कर रही थी। रामली ने जाना चाहा पर सुलोचना ने मना कर दिया। उसने उसे कठोर स्वर मे कहा, "यदि तू चली गयी तो तुझ पर जो सदेह किया गया है, वह सच मे बदल जायेगा। सेठानी जी कहेगी कि चोर के पाँव ही तो कच्चे होते हैं।···यदि रामली सच्ची थी तो वह जाती क्यों ?·· आज से तुझे मैं महीना (वेतन) दूगी।"

"इससे बात और बढेगी।" रामली ने स्थिति का खुलासा किया।

"तो क्या हुआ ? मैं कोई तुम्हारे बाबू के साथ भाग कर आयी हूँ ? फेरे खाकर बाजे-गाजे के साथ आयी हूँ, इस घर की बहू हूँ, कोई पर्दायतण नही कि कोई निकाल देगा ? जहाँ तक अधिकार की बात है, उसे मैं लूगी ही, उसे पाने के लिए अवश्य लड़ूँगी लड़ती रहूँगी ! किसी की दबैल बन कर तो नही जीऊँगी। सास अन्याय, अत्याचार, अनाचार लगातार करें, वह तो ठीक है और बहू उफ भी निकाले तो हल्ला खड़ा हो जाए।"

"मेरी तो कोई सुनता ही नही। बड़े ही खोटे भाग हैं मेरे ! खोटे भाग नही होते तो वे मरते ही क्यों ? काला ओढ़ती ही क्यों ?·· सच बहू जी, है तो मुझे जन्म देने वाला बाप···पर उसने कसाई की कमी पूरी की है। मैं मन को लाख रोकूँ पर निकलेगी बाप के लिए दुराशीष ही।·· उस बाप का कभी भी भला नही होगा जिसने गाय को मौत के खूँटे बाँध

दिया। आप तो जानती हैं कि टी० बी० का बीमार अच्छा नही होता पर मेर बाप ने रुपयों के लालच मे मुझे बेच डाला। मैं जन्म-अभागी हूँ।"

"मैं सब जानती हूँ तभी तो तुझे नही जाने दे रही हूँ। भरी जवानी मे भटक गयी तो हमें भी पाप का भागी बनना पड़ेगा।"

रामली ने सिर्फ अश्रु बहा दिये।

इस लड़ाई की खबर घर के लोगो तक ही रही। रामली, कासी, चांदा सेठानी, सुलोचना, बस चार। पांचवां कोई था तो मुनीम। मुनीम को बस इतना ही आभास हुआ कि कुछ बात जरूर है।

कासी का हृदय पीड़ित था। वह चिंतित थी कि गृह-कलह सुख-शांति को नष्ट कर देती है, इससे लक्ष्मी की भी वृद्धि नही होती। वह पुरानी नौकरानी थी और उम्र भी चांदा सेठानी के लगभग थी। उसे अपनी औकात का भी ज्ञान था कि एक नौकरानी को मालिको की लडाई में नही बोलना चाहिए। फिर भी उसका मन पंचायती करने को व्यग्र था।

आखिर वह चाँदा सेठानी के पास गयी।

चाँदा सेठानी माला जप रही थी। उसकी मुद्रा कठोर थी! उसकी मुद्रा और होठो की गति देख कर कासी मन-ही-मन कह उठी—जप करने वाला उग्र होता जाता है। · पर वह बाहर से काफी गभीर रही। वह चुपचाप बैठ गयी।

थोड़ी देर बाद सेठानी ने मालावाली 'गोमुखी' जो गर्म कपड़े की बनी हुई थी रख दी और खिड़की से राह देखने लगी।

सामने की दीवार पर बैठी हुई 'कमेड़ी' बूंऽऽवूं बूंऽऽवूं बोल रही थी। उसके पास थोड़ी दूर एक छज्जे पर कबूतर-कबूतरी आपस मे चोंचें लड़ा रहे थे।

उन्हें दृष्टि मे भर कर चाँदा सेठानी ने पूछा, "क्यों मुँह फुला कर बैठी है। आज घर मे कोई काम नही है क्या?

"है। बहुत काम बाकी पड़ा है।"

"फिर करती क्यों नहीं?"

"अभी नही करूगी तो बाद मे करना पड़ेगा।" मेरा काम तो मुझे

ही करना पड़ेगा पर मन बड़ा ही दुखी है।"

"क्यों, तुझे क्या कष्ट है ?"

कासी ने चाँदा सेठानी की ओर आश्चर्यभरी दृष्टि से देखा। लम्बा साँस लेकर वह बोली, "सोचूँ तो बहुत कष्ट है और न सोचूँ तो कुछ भी नहीं है।...सेठाणीजी ! मैं आपकी जूनी नौकरानी हूँ। मैंने आपका बहुत नमक खाया है इसलिए मैं मुंह में मूग डालकर नहीं बैठ सकती। इस हवेली के हित के लिए कहे बिना नहीं रह सकती...आज इस हवेली की बहू बाहर से मंगा कर पेट भरे...कल वह घर से बाहर निकलेगी ..अपने पीहर जाकर रोटी खायेगी...फिर तरह-तरह की बातें होगी। किसी के मुंह पर हाथ नहीं रखा जा सकता।...इस तरह सारे शहर में सेठ नारायणदास जी की निंदा हो जायेगी।...बच्चे तो बच्चे ही रहेंगे। लोग आपको ही कहेंगे कि सेठानी जी तो समझदार थी। उसने तो ऊंच-नीच सब देखी है। उन्होंने अपने घर की इतनी बड़ी बात कैसे होने दी। समझदार तो आप पर ही थूकेंगे।"

"तो तू यह चाहती है कि मैं दो पैसे की लुगाई से हार मान जाऊँ।" उसने तौर बदल कर कहा।

"मैं ऐसा कहां कहती हूँ पर मार तो समझदार को ही है। आप किसी भी अंग को उघाड़ो, पानी आपका ही उतरेगा। मेरी बात मानो और बहू को जाकर कह दो कि वह बाहर से कुछ भी न मँगवाए।"

"मैं नहीं कहूंगी। मैं उसकी सास हूँ। मैं इसके सामने नहीं, यह मेरे सामने इस हवेली में आयी है। वह सिर उघाड़ कर घूमे तो भी मैं उसे मना न करूँ।"

कासी ने जान लिया कि सेठानीजी हार नहीं मानेगी। सास के मरने के बाद चाँदा सेठानी मे घमण्ड के वृक्ष उग गये थे। वह अपने को इस हवेली की महामहिमा मानने लगी थी। जो कह देती, उसे पूरा करने का हठ करती है। सोचती नहीं कि समय बदल गया है। सेठानीजी के समय मे ठाठवाट कहाँ थे। हाथ से चक्की चलानी पड़ाती थी। दिन-रात काम करते-करते हाड़ टूट जाते थे। बड़े-बड़ेरों के सामने जबान खोलती-सी म गता था।...अब जमाना बदल गया है। खाती है और पीत

पडी रहती है । खाली दिमाग शैतान का घर ही होता है ।

यह सोचकर वह सुलोचना के पास गयी । सुलोचना कोई किताब पढ रही थी ।

कासी को देखते ही उसने किताब रख दी और पूछा, "क्या बात है कासी बाई ।"

"बहूजी ! घर की कलह घर को चौपट कर देती है। आप पढ़ी-लिखी है। दुनिया की ऊँच-नीच समझती हैं। क्या अच्छा है और क्या बुरा, इसका भी आपको ज्ञान है। मैं तो इस घर की एक कीड़ी (चींटी) हूँ। क्या बिसात-औकात है मेरी। फिर भी आपको हाथ जोडकर कहूँगी कि आप घर की बात को बाहर न जाने दें। सास तो माँ बराबर होती है। माँ ने आपको अनुचित बात भी कह दी है तो सुन लेना चाहिए।···आप दामोदर को नहीं जानती। मैंने उसे पाला-पोसा है। उसे जब यह मालूम होगा तो कितना दुख होगा ? उसे इस बात का ज्यादा दुख होगा कि मेरी बहू सीधी और पढी-लिखी है । उसने यह उत्पात किया है।···आप उसे आने दीजिए ···शांति से बातचीत कर लीजिए। मेरा कहना मान लीजिए, खाना खा लीजिए। जो रोटी का तिरस्कार करता है, उसे भगवान भी छिमा नहीं करता।"

"आप सोचिए···।"

"जेड़ा पड़ा सुभाव जासी जीव सूं नीम न मीठो होय सींचो घीव सूं··· बहूजी ! स्वभाव तो मरने के बाद ही जाता है। नीम को घी से सींचने पर मीठा थोड़े ही हो जायेगा। सेठाणीजी अब पक्का पेड़ हैं···झुक नहीं सकता ···टूट सकता है। आप मेरी बात मानकर कुछ दिन शांति कर लीजिए··· आपको मुझ गरीब की सौगन्ध है।"

"ठीक है···सिर तो समझदार को ही झुकाना पड़ता है। मैं आपकी बात मानती हूँ पर उनके सामने सच-सच कहना कि किसका कसूर है ?"

और इस तरह गृह-कलह समाप्त हो गयी पर दोनों के बीच जो संघर्ष के बीज पड़े थे, वे अंकुरित होते ही जा रहे थे ।

☐

☐

चांदा सेठानी को इस बात से भी एतराज था कि सुलोचना चोरी-चोरी अपने पति को पत्र क्यों लिखती है?

उसने कासी से कहा, "देखा कासी, बहू चोरी-चोरी दामोदर को 'कागद' लिखती है। पढी-लिखी है न, जरूर वह मेरे बारे में उल्टी-सुल्टी बातें लिखती होगी। पर मेरा बेटा मेरा है, उसने मेरे आंचल का दूध पिया है, वह करेगा वही, जो मैं चाहूँगी।"

"यह तो मुझे भी विश्वास है। छोटे बाबू आपके सिवाय किसी की भी बात नही मान सकते।···पर मेरी आपसे इतनी ही विनती है कि आप भी समय देखते हुए जरा नरमी से सोचिए।"

"क्यों सोचूं? समय तो पहले जैसा ही है।" चांदा ने पटाखे की तरह भड़क कर कहा, "समय कौन-सा बदला है। दिन मे उजाला रहता है और रात मे अँधेरा।"

कासी ने संयत स्वर में कहा, "मेरे कहने का मतलब यह था कि समय के रंग-ढग बदल गये हैं। एक समय ऐसा था कि हाथ से चक्की चलानी पड़ती थी, आज समय ऐसा आ गया है कि बिजली से चक्की चलने लगी है। मोटर गाड़ी आ गयी है। पंखे चल रहे हैं। पहले कोई बाणिये की बहू अपने पति के संग परदेश नही जाती थी, किंतु अब कई बहुएँ जाने लगी हैं। समय तो बदला ही है।"

चाँदा सेठानी ने पीठ तकिये के सहारे अपने को फैलाकर कहा, "अरी मैंने तो यह सुना है कि कई लोगों ने तो पातुरों से ब्याह भी कर लिया है। मांस-मिट्टी भी खाने लगे हैं।·· पर हमारे घर में तो यह नहीं चलेगा। हमारे घर की मान-मर्यादा और धर्म और है।···अभी तो चाँदा सेठानी का पुण्य इतना तेज है कि उसका बेटा उसकी बात रखेगा। यह बहू लप्पर-चप्पर चाहे करती रहे। वैसी लप्पर-चप्पर करेगी तो···।"

"तो···?" एक सवाल झपट कर सेठानी के चेहरे से जा चिपका।

"इसको छोड़ छिटकाऊँगी और दूजी छोरी अपने बेटे को ब्याह कर ले आऊँगी। मैं अभी तक गम खाये बैठी हूँ, जब बिगड़ जाऊँगी तब किसी के हाथे-बाथे नही रहूँगी।"

कासी ने कोई जवाब नही दिया। उसके चेहरे पर प्रशांत मौन

गया पर उसके भीतर बड़ी हलचल मच रही थी।

वह उठ कर चलने लगी कि रामली आ गयी।

रामली ने सेठानी की ओर देखकर कहा, "सेठानीजी ! बहूजी अपने नानाणै (ननिहाल) जा रही हैं। दो दिन नहीं आयेंगी।"

"उसे कह दें कि रात को वापस घर आ जाएँ। रात को नानाणै रहने की कोई जरूरत नहीं है।"

रामली ने जाकर सुलोचना को सेठाणी का हुक्म सुना दिया।

सुलोचना ने नाक फुला कर कहा, "मैं नहीं आऊँगी। क्या मुझे इतना भी अपनी मर्जी का करने का अधिकार नहीं है ! सास क्या हो गयी है, अपने को बीकानेर की महारानी समझ रही है।...बात-बात में 'धोचा-बाजी' करने से वे स्वयं ही अपनी कद्र कम करेंगी। फिर सासपन कितने दिन रहेगा।"

रामली ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप खड़ी रही। इधर वह चाँदा सेठानी और सुलोचना की केवल बातें ही सुना करती थी। सुलोचना कहो या चाँदा सेठानी, वह दाएँ कान से सुनती थी और बाएँ कान से निकाल देती थी।...

अप्रत्याशित सुलोचना का चेहरा पीड़ा से भर आया। ममोलिये (एक जीव) की-सी कोमल करुणा उसके चेहरे की पीड़ा में घुल-मिल गयी।

वह पलंग पर बैठ गयी।

रामली पलंग के नीचे बैठ कर सुलोचना के कपड़े तह करने लगी।

वह भाव-विभोर होकर बोली, "रामली ! मेरे ही भाग्य खराब थे वर्ना मैं इस घर में नहीं आती। मुझे तो किसी पढ़े-लिखे घर में जाना चाहिए था जहाँ कुछ खुला-खुला वातावरण होता, पति-पत्नी साथ रहते, यहाँ केवल पैसा ही पैसा है।...मैं केवल पैसों के बीच में बैठकर नहीं जी सकती। मैं कराची मे रही हूँ। वहाँ सब खुला-खुला था; एक स्वतंत्रता थी, गजभर का घूंघट नहीं था, आँखों की लाज थी। सच रामली, मेरा यहां दम घुट जाता है। यहाँ से निकल कर मैं खुले मैदानों में दौड़ना चाहती हूँ। इस मखमली गद्दे वाले पलंग पर अकेली न सोकर मैं अपने

पति के सग फर्श पर सोना चाहती हूँ।" उसकी आँखें भर आयीं।

रामली ने कहा, "दामोदर बावू तो अच्छे है।"

"उनसे मेरी कोई शिकायत नहीं है।···पर जब बहू-माँ के बीच सत्य असत्य, न्याय-अन्याय का फैसला करना होता है तब हर बेटा माँ का पक्ष-धर वन जाता है।···तब हर पति अपनी पत्नी को ही अनुचित बात मानने के लिए वाध्य करता है। माँ चाहे डायन हो पर वह उसके दाँत न तोड़ कर निर्दोष बहू के ही हाथ तोड़ेगा। यही आकर हर पुरुष अन्यायी बन जाता है।"

रामली ने कोई उत्तर नहीं दिया। पर उसने सोचा कि इस घर का तो अब राम ही मालिक है। इन सास-बहू मे समझौता नहीं हो सकता।

सुलोचना थोड़ी देर के बाद अपने ननिहाल चली गयी।

□

□

दामोदर की दो चिट्ठियाँ एक साथ आयी थी। एक माँ के नाम और दूसरी पत्नी के नाम।

माँ चाँदा सेठानी की चिट्ठी मुनीम ने पढ़ी--सिध श्री बीकानेर शुभ सुथाने, पूज्य माताजी से जोग लिखी कलकत्ता बन्दर दामोदर का पाँव धोक बचना। उपरंच समाचार यह है कि यहाँ श्रीकृष्ण भगवान की कृपा से सब ठीक है। मेरा काम-काज आपकी आशीर्वाद के फलस्वरूप खूब चल रहा है। माँ लक्ष्मी की कृपा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मेरे मामाजी भी बहुत ही सोरे-सुखी हैं और उन्होंने अपने छोटे भाई को भी अपना काम करवा दिया है। अब समाचार यह है कि आपने बीनणी (बहू) के बारे में जो-जो समाचार दिये, उनके मुत्तलिक मैं क्या कर सकता हूँ। आप स्वयं समझदार हैं। घर-गृहस्थी तो आपको ही वहाँ बैठकर संभालनी है। मैं इतनी दूर से क्या कर सकता हूँ। बीनणी बच्ची है और आप समझदार। आपने स्वय ही बीनणी को पसंद किया था···आपकी छोटी-छोटी बातों से मुझे बडा कष्ट होता है। काम-धंधे मे भी बाधा पड़ती है। इसलिए आप यह 'रांडी-राड़' मुझे न ही लिखें तो ठीक है। वैसे मैं तो आपका बेटा हूँ। आपके हुक्म के ऊपर से नही जाऊगा। आप जो कहेंगी, उसे ही करूँगा पर

समय बदल गया है। बदलते समय को देखकर आपको भी अपना स्वभाव बदलना चाहिए।···आपके लिए एक गाँठ धोतियों की भिजवा रहा हूँ— आप गुरुओं व बामणों मे बाँट दीजिएगा। धर्म की जड़ सदा हरी होती है। पिताजी के श्राद्ध के दिन अपने गुरू को बुला कर पाँचों कपड़े धोती, कुर्त्ता, गंजी, जूती और पगड़ी जरूर दे दें।·· सब ठीक है। घर की सारी भोलावण (जिम्मेदारी) आपकी है। एक बार फिर पाँव धोक···! मैं अच्छी तरह हूँ।"

चाँदा सेठानी व्यंग में बोली, "देखा मुनीमजी, है न कलयुग·· बहू के दोष नही देखें—माँ को ही समझा रहे है।···इस जमाने की यही रीत है कि जन्म देनेवाली तो दूर होती रहती है और सेज की सिणगार नजीक!··· सच कहती हूँ कि वे जिंदा होते तो क्या कोई मेरे सामने सिर उठा सकता था? मैं तो आज से उसे कुछ नही कहूँगी···जो उसकी मर्जी मे आये वह करे···।

मुनीम शिवप्रताप ने अपनी पगडी को ठीक करते हुए कहा, "शाति रखने मे ही फायदा है।"

उधर सुलोचना ने अपनी चिट्ठी पढ़ी। चिट्ठी मे लिखा था— जोग लिखी कलकत्ता बन्दर से दामोदर का हेतालु राम···राम! उपरंच समाचार यह है कि तेरा 'कागद' मिला। सारे समाचार जाने। तू पढ़ी-लिखी और चतुर नारी है। क्या यह सही नही कि तू मेरे बाप की मौत के बाद माँ का दुख कम करे या बढ़ाए?···लोग कहते हैं कि पढ़ी-लिखी स्त्री के चार आँखें होती हैं।···वह सामने भी देख सकती है और पीछे भी ···फिर घर मे 'गोधम' और तनाव क्यूँ?·· ऐ! समझ रख, मैं तेरी व्यथा को जानता हूँ।···पर माँ का मान-सम्मान करना अपना धर्म-कर्म दोनों हैं। तुम्हे भरोसा देता हूँ कि मैं तुम्हें पिताजी के बारह महीने होते ही या तो यहाँ बुला लूँगा—या मैं स्वयं लेने आ जाऊँगा। तब तक तू शाति से बैठी रह। मैं खुद भी तेरा अभाव महसूस करता हू। दिन भर धंधे की हाय-हाय के बाद प्यार से सिर सहलानेवाली के बिना मन बड़ा ही उचाट और दुखी हो जाता है!···अपने शरीर का ख्याल रखना। बस!

सुलोचना को लगा कि उसमे एक विचित्र-सी ताजगी भर आयी है!

वह पलंग पर लेट कर गाने लगी

पागड़िया रा पेच भँवरजी
म्हांनै ढीला-ढीला लागै
थैं किण रे आगल् सीसड़लो झुकायो
बादीला रैंण कठै गमाई
दातां री बतरीसी भंवर म्हांनै
फीकी-फीकी लागै
थे किण रे आगल् हस नै बताई
कोडीला रैंण कठै गमाई ··

रामली आकर दरवाजे की ओट मे खडी हो गयी। विधवा दासी। वह किस प्रीतम के लिए गाये। किस भरतार के लिए पुलकित होए।···उसके आगे तो धूल-धूसरित पगडंडियाँ ही पगडडियाँ है।···एक तरेडो भरा जीवन ! सूखे भुरूट के चिपकने वाले काँटों-सा पीडादायक जीवन।

जद-जब सुलोचना अपने पति की याद मे खोती है और अपने प्रणय-प्रसंग रामली के सम्मुख प्रस्तुत करती है तब-तब रामली अथाह वेदना से घिर जाती थी !

उसने भावमुग्ध गाने मे तन्मय सुलोचना को खखार करके चौंकाया।

रामली को देखते ही उसने आनदातिरेक होकर उसको अपनी बाँहों मे भर लिया, ' रामली ! अब बिछोह के दिन गिनती के हैं।"

"कैसे !"

"उनका 'कागद' आया है। उन्होंने कहा है कि वे मुझे अपने साथ ले जायेंगे।"

"और मैं·· ?"

सुलोचना ने रामली के दुखाभिभूत चेहरे को देखा तो खिन्न हो गयी।

उसे घूरती हुई वह बोली, "तुझे तुझे मैं अपने साथ ले जाऊँगी।"

' हाँ बहूजी, मुझे आप अपने साथ ले जाइएगा ··मैं ··

हवेली मे सुख से नहीं रह पाऊँगी।"

"साथ ही ले जाऊँगी। चिंता मत कर··।"

हम साथ ही रहेंगे।"

रामली ने पूछा, "बहूजी ! एक बात पूछूँ ?"

"पूछ।"

"मैं इस जन्म मे जो दुख उठा रही हूँ, वे मेरे पूर्वजन्म के पापों के फल है, ऐसा बड़े-बडेरे कहते हैं, पर मैं इस जन्म में कोई पाप नही कर रही हूँ, क्या मुझे अगले जन्म मे आप जैसा सोरा-सुखी जीवन मिलेगा ?"

"क्यो नही मिलेगा ? सुलोचना ने गभीर स्वर में कहा, "न मैंने ईश्वर को देखा है और न पिछले जन्म को। सिर्फ पूर्वजों को मानती हूँ···क्यों मानती हूँ···क्योकि सभी मानते आये है। मेरे दादा-दादी, माँ-बाप, सास-ससुर नानी-नानी·· क्या इन सबका मानना हमारे लिए काफी नही।··· रामली ! भाग्य, प्रारब्ध और कर्म कुछ है जरूर···वर्ना-तेरे-मेरे बीच इतना अन्तर कैसे होता ?···तेरी सेठानी जो एक लादेवाले की बेटी थी, आज रानियों जैसे ठाट-बाट से कैसे रहती ?···कुछ जरूर है, वर्ना आदमी-आदमी के बीच इतना भेद-विभेद ?

रामली अपने दोनों घुटनों पर सिर रखकर बैठ गयी। बोली, "एक बात और बताइए ··ईश्वर तो दयालु है···कृपानिधान है···फिर मुझे इतना दुख क्यों दे रहा है ?"

"मैं भी सोचती हूँ, जब ईश्वर दयालु है फिर वह किसी को दुख क्यों देता है ?" सुलोचना ने सोच कर कहा, "मैं इतनी पढी-लिखी नही हूँ। फिर भी एक बार मेरे दादाजी के पास कोई स्वामी जी आये थे। वे बड़े ही तेजस्वी थे। उन्होने मेरे दादा को कहा था कि भाग्य और प्रारब्ध कुछ नही है, यह सब व्यवस्था का दोष है। यदि हर व्यक्ति को जीने और आगे बढने का अवसर मिले तो वह जरूर उन्नति करेगा !···आज सारा बनिया-समाज करता क्या है ! केवल पैसे से पैसा ही तो कमाना है !··· सफलता और असफलता तो बाजार पर निर्भर करती है।"···एक पल रुककर सुलोचना फिर बोली, "बड़ी लम्बी बातचीत थी !···पर मैं इतना ही समझ पायी कि मेरे दादा भाग्य और प्रारब्ध पर अड़े रहे और स्वामी जी परिस्थितियों पर !···स्वामीजी की एक बात ने मुझे झकझोर दिया। उन्होंने कहा कि सभी बातें भाग्य और ईश्वर की मर्जी से होती हैं, तो फिर

की गाड़ी कैसे चलायेगी ?···मेरी बहू जी ! अभी तक 'गू' बिखरा नहीं है। जब बिखरेगा तो सही गलत का पता चल जायेगा। पति मेरा मरा है ···विधवा मैं हुई हूँ···समझी।"

सुलोचना सिर से पाँव तक जल उठी। वह चीख कर बोली, "इस छोटी-सी बात के लिए इतने बतंगड़ की क्या जरूरत थी ? इतना ही कह देती कि साड़ी दूसरी पहन ले।···राम बचाये आप से।·"

और वह वापस ऊपर चली गयी।

चाँदा सेठनी पीछोकड़े में जाती हुई बोली, "मैं थोथी-खोखली। गुर्राहटों से नहीं डरती।"

और फिर सन्नाटा पसर गया।

☐

सास-बहू के बीच तनाव बढ़ता ही गया। अब इस तनाव की चर्चा हवेली के बाहर तक जाने लगी थी। जिसके कारण मुनीम को मानसिक चिन्ता थी। आखिर यहाँ का सारा दायित्व तो मुनीम पर ही था। एक दिन तो मुनीम ने सुलोचना को बुलाया।

सुलोचना अपने मुनीम की एक ससुर की तरह इज्जत करती थी। वह उनके सामने नहीं बोलती थी। उन दोनों के बीच सीधा संवाद नहीं था। इसलिए सुलोचना अपने साथ रामली को ले आयी।

मुनीम दानखाने में बैठा था। सुलोचना आँगन में। बीच में दरवाजा था जिस पर पर्दा लगा हुआ था।

मुनीम ने बड़प्पन से कहा, "बीनणी ! मैं आपके बाप की जगह हूँ। आपका अहित नहीं चाहूँगा। आपका नमक खाता हूँ। घर की राड़ जब बढ़ जाती है तब वह 'बाड़' का रूप धारण कर देती है। आँगन में दीवार खड़ी कर देती है।···हृदय के बीच तरेड़ पैदा कर देती है।···फिर मान-मर्यादा को मिट्टी में मिला देती है।···मैं आपसे इतना ही कहूँगा कि आप जब तक छोटे बाबू न आ जाएँ तब तक सेठाणीजी के सामने बोलें ही नहीं।"

"मैं नहीं बोलूँगी।" रामली ने मुनीम को सुलोचना का वाक्य

सुनाया।

"आपको बताता हूँ।" मुनीम ने गर्व-भरे स्वर मे कहा, "आज की स्थिति तक पहुँचने में सेठ नारायणदास और सेठाणी जी ने बडा ही त्याग किया है। उनके त्याग को भुलाया नही जा सकता।"

"त्याग करने का मतलब यह नही है कि त्याग को वापस भुनाया जाय। त्याग की महत्ता तभी है जब उसे करके भुला दिया जाय। · फिर मुनीम जी, यह कोई जरूरी नही कि आप जो सोचते हों केवल वही सही हो? सही सोच की पहचान तो आदमी अपने विवेक से ही करता है।··· फिर यह भी आप मानते ही होंगे कि हर आदमी का आनन्द भी अपने अलग किस्म का होता है। उस आनन्द को मिटाना भी तो पाप है।"

यह सारा संवाद ऐसे हो रहा था जैसे सुलोचना मुनीमजी को नही, रामली को कह रही हो।

यह भी अच्छा रहा कि उस समय चाँदा सेठानी बाहर गयी हुई थी।

"मैं आपकी हर बात समझता हूँ। मैं यह भी महसूस करता हूँ कि सेठाणी जी जैसा चाहती है वैसा इस बदलते समय मे सम्भव नही है। पर किया क्या जा सकता है? · मैं तो आपको इसलिए कह रहा हूँ कि आप समझदार हैं।"

"मैं आपकी बात मान लेती हूँ पर जब 'वे' आयें तो आप सच-सच बताएंगे। आप स्वयं विचारिए कि इस तरह कैसे कोई सुख और शांति से रह सकता है।"

"मैं सारी स्थिति छोटे बाबू को समझा दूंगा।"

बस सुलोचना ने चाँदा सेठानी का विरोध लगभग बन्द कर दिया।

चाँदा सेठानी ने पूरे पन्द्रह दिन बाद कासी से गर्वित स्वर में कहा, "क्यों कासी आ गयी न रास्ते पर।···अब बहू टर्र-टर्र नहीं करती।"

"इसी मे इसकी भलाई है।"

"मेरे बेटे को आने दे···सारी हेकडी नही मिटवाई तो मुझे चाँदा सेठानी मत कहना।"

"सेठाणी जी! · कभी-कभी भ्रम पाले रखना ही ठीक छोटे बाबू तो आयेंगे ही।"

"कासी ! मैं हार नही मानूंगी ।"

कासी ने कोई जवाब नही दिया ।

सुलोचना काफी संयम बरत रही थी । वह कोशिश करती थी कि उसके और सास के बीच संघर्ष बढ़े नही। वह मुनीमजी की सलाह पर अच्छी तरह अमल कर रही थी। उसके न बोलने को चाँदा सेठानी यही समझ रही थी कि सुलोचना ने हथियार डाल दिये हैं।

पर उसका भ्रम जल्दी ही टूट गया !

उस दिन कोलायत का मेला था ।

सुलोचना की मौसी उसे बुलाने के लिए आयी थी। सुलोचना ने जाने से इन्कार कर दिया, "मासी जी ! अभी ससुर जी को मरे एक साल ही नही हुआ है, मैं मेले नही चलूंगी ?"

उसकी मासी उसकी बात से सहमत हो गयी।

पर चाँदा सेठानी से नही रहा गया । उसकी मासी के जाते ही उसने सुलोचना से कहा, "मेले चली जाती···पति तो मेरा मरा है।"

सुलोचना को सहसा एक बात याद आ गयी कि आ बैल मुझे मार।··· अनुचित बात करने में सास जी को क्या मिलता है ? वैसे भी कई दिनों से वह चाँदा सेठानी के व्यंग सुनती आ रही थी। आज उसे चाँदा सेठानी की बात लग गयी। वह भी उससे तीखा बोल गयी, "मरा तो पति आपका ही है, मेरा तो हँस खेल रहा है। पर मैं मेले नही जाऊँगी।···पर आपने तो उनकी मौत के तीसरे दिन ही दूध का कटोरा पिया था।"

चाँदा सेठानी भड़क गयी, "तू·· तू मुझे ताना देती है ? जानती नही, मैं उन दिनों वैद्य जीवनराम जी की दवा ले रही थी, जिसके पथ्य में दूध बताया हुआ था।"

आज सुलोचना को बड़ा ही गुस्सा आ गया था। वह बोली, "राम जाने, बताया हुआ था या नही। पर आपके मन ने इसे कैसे स्वीकार कर लिया ?"

"ओह !" चाँदा सेठानी ने सिर पकड़ा। फिर भाव रहित होकर कहा, "पता नही, तेरी माँ ने क्या खाकर तुझे पैदा किया या कि राम ही बचाये।"

सुलोचना को उपेक्षा भरी हँसी आ गयी। वह व्यंग से बोली, "जो आपकी माँ ने खाया था, उससे तो मेरी मां ने अच्छा ही खाया था। वह तो लखपति कोठारियों की बेटी थी। आपके घरवाले तो 'लाई-खाई' वाले ही थे। घास व लकड़ियाँ बेचते थे।"

चाँदा को लगा कि बहू ने इसके गाल पर चांटा मार दिया है। वह भड़क कर बोली, "मेरा ही खाती है और मुझे ही आँख दिखाती है, मेरी बिल्लो मुझसे ही म्याऊं···चोखे घर मे आ गयी थी···इसलिए खा-खा कर 'पाडी' हुई जा रही है। ज्यादा ही अपने को समझती है तो मेरी हवेली छोड़ कर चली जा ··मैं अपने बेटे का दूसरा ब्याह कर लूंगी।"

"मुझे जाटणी की जाई मत समझिए। मुझे निकालने-वाले को ठेंगा। आपके बेटे की भायली (प्रेमिका) नही हूँ—बहू हूँ बहू।···मुझे निकालने वाले को मैं खुद नही निकाल दूंगी। मैं अपना हक नही छोड़ूंगी।"

चाँदा सेठानी का धैर्य चला गया। उसने सुलोचना को खूब ही उल्टा-सुलटा सुनाया। वह भी आज एकदम गुस्सीली हो गयी।

अन्त में चाँदा सेठानी ने सबके सामने ही घोषणा कर दी, "जब तक दामोदर नही आयेगा तब तक मैं अन्न ग्रहण नही करूंगी। भूख से मर जाऊंगी।"

इधर आत्मग्लानि, क्रोध और पश्चाताप की आग में दग्ध होकर सुलोचना ने अपने कमरे में फाँसी का फंदा बना लिया और लटकने को तैयार हो गयी।

ऐन मौके पर रामली आ गयी। इसके बाद घर में कोहराम मच गया। सुलोचना को सभी ने समझाया।

इन सभी स्थितियों का अध्ययन करके मुनीम ने दामोदर को तार दे दिया। साथ में विस्तृत समाचारों की चिट्ठी भी लिख दी।

☐
☐

हवेली ऐसी लग रही थी जैसे युद्ध के पश्चात सन्नाटों से घिरी-घाटी।

नौकर-चाकर, सास-बहू—साईस···मुनीम-रोकड़ियाँ, सब को देखकर

ऐसा लगता था कि उनके बीच अजनबीपन जन्म आया है। सारी बोलचाल बिलकुल औपचारिक थी। हर कोई इतना ही बोलता था जितनी उसे जरूरत होती, अतिरिक्त शब्दों का व्यय कोई नही करता था।

चाँदा सेठानी ने अन्न खाना छोड दिया। वह कमजोर होने लगी। सुलोचना 'रूठी रानी' की तरह अपने ही मालिये मे पडी रहती थी। कभी-कभी मन ऊबता तो हवेली की 'रांस' मे छोटी-सी खिड़की खोल कर बैठ जाती थी। कभी-कभी आत्मपीडा मे दग्ध होकर फफोले की तरह फ़ीस जाती थी, आँखें भर-भर आती थी। उसे अपनी व्यर्थता का बोध होता था। वह सोचती थी कि यदि किसी भी प्राणी को सोने-चांदी की शिलाओ के बीच रख दिया जाय और उसे रोटी-पानी नही दिया जाय तो क्या वह जीवित रह सकेगा? ···चाँदी-सोना कुछ भी काम नही आयेगा? वे वही रखे रहेंगे और हंसा अकेला ही उड़ जायेगा।

कासी और रामली यंत्र की तरह काम करती थी। कासी चाँदा सेठानी की आज्ञा मानती थी और रामली सुलोचना की। दिनचर्या तो गड़बड़ा ही गयी थी, बस हुक्म के मुताबिक काम···काम · काम!

चाँदा सेठानी केवल दूध पीती थी, फिर भी उसमे दुर्बलता नजर आ रही थी। शरीर हलका हो रहा था। आँखें धंसने लगी थी। पर उसे समझाए कौन? यदि कासी कभी-कभार कुछ कहती तो वह नाराज होकर कहती, "मैं मर जाऊँगी तो सारी रामायण ही खत्म हो जायेगी।··· मेरी लाश पर मेरी बहू दूध का कटोरा भर कर पिएगी तब उसकी छाती मे ठंडक पहुँचेगी।"

तनाव ही तनाव!

सात दिन बाद दामोदर आया।

मुनीम जी ने आते ही सारी स्थिति को सच-सच बता दी। अन्त मे मुनीम ने कहा, "छोटे बाबू! मैंने आपका नमक खाया है। आपकी सुख-शांति, इज्जत, आबरू और बुराई, भलाई का मैं साझीदार हूँ। आपसे ज्यादा इस घर की जिम्मेदारी मेरी है। मैं आपको यही सलाह दूंगा कि आप बहू को अपने साथ कलकत्ता ले जाइए।···यदि आप थोथी ममता, मान-सम्मान और लोक-लज्जा से डरेंगे तो यह झगड़ा आपकी इज्जत

मिट्टी में मिला देंगा। आप निश्चिन्त होकर कमा भी नही पायेंगे। राड़ से बाड़ भली। चिड़पड़े सुहाग से रंडापा चोखा।"

दामोदर ने मुनीम की बात को सुनकर माँ की बात को सुना। माँ ने सुलोचना के बारे मे यहाँ तक कह दिया, "उसका चरित्र ठीक नही है। मुझे तो रामली और ये दोनों ही गड़बड़ लगती है। मेरी बात मान और उसे छोड-छिटका और दूसरी शादी कर ले।"

दामोदर ने कोई जवाब नही दिया।

वह फिर सुलोचना के पास गया। उसने उससे पूछा तो वह बोली, "मैं तो इतना ही जानती हूँ कि मैं इस तरह का जीवन नही जी सकती जिस तरह का सासू जी ने जिया है। केवल पैसा ही आदमी की नियति नही है। मुझे तो आप जो कहेगे मैं वही करूँगी···यहाँ तक कि यदि आप वह देंगे कि सास जी जैसा कहे—वैसा करूँ तो भी करूँगी क्योंकि मैं आपकी पत्नी हूँ, आप मेरे पति परमेश्वर हैं।···परन्तु मैं फिर ज्यादा दिनों तक जिन्दा नहीं रहूँगी।"

दामोदर ने माँ को जाकर रोटी खिलायी। माँ ने ना-नू की तो उसने कहा, "मैं भी थाली पर नही बैठूंगा।"

लाचार चाँदा सेठानी ने खाना खा लिया।

अतीत टूट गया।

□
□

चाँदा सेठानी को लगा कि पीड़ामय अतीत के कारण उसका शरीर शक्तिहीन व दिमाग सन्नाटो से भर गया है। आँखें गीली हो गयी हैं। फिर वह निर्णायक बातचीत करने के लिए अपने को तैयार करने लगी।

चाँदा सेठानी और दामोदर के बीच निर्णायक बातचीत शाम को हुई। बातचीत लम्बी चली। तर्कों, उदाहरण और दृष्टांतों से भरी बातचीत मे कभी-कभी सूक्तियों व मुहावरों का प्रयोग होता था। अन्त मे निर्णय यही रहा कि दामोदर अपनी पत्नी सुलोचना को अपने साथ कलकत्ता ले जायेगा और चाँदा सेठानी अकेली रहेगी! जबकि चाँदा सेठानी निरन्तर यही कहती रही "बहू मेरे कुल की मर्यादा के अनुसार

यही रहेगी। जब मैं यहीं रही हूँ तो इसे रहने में क्या एतराज है ? यदि बेटे तुम चाहो तो मैं कलकत्ता चल सकती हूँ, पर बहू यही रहेगी। इसी हवेली में, मेरी तरह। घर की परंपरा की तरह।"

दामोदर ने गभीरता से सोचकर यही समझा कि माँ सुलोचना को मेरे साथ नही रहने देने की जिद्द कर रही है। यह उसकी सर्वथा हठ-धर्मिता है। इसलिए उसने बहू को साथ ले जाने का निर्णय ले लिया।

चांदा सेठानी परास्त हो गयी। रात को वह हवेली के अगले डागले पर प्रेतात्मा की तरह घूमती रही। घोर अँधेरा, तारें, उल्लू, कोचरी, तारों पर बैठे कबूतर और हवेली की एक-एक दीवार उसे कह रही थी—खिलखिला कर कह रही थी—बस हार गयी चांदा सेठानी, मान ली बात तेरे श्रवण कुमार ने ?…रह गया तेरा रुतबा ? अब खूब होगी तेरी जग-हँसाई ?…

वह आन्तरिक द्वन्द्व में सागर की लहरों पर बिना पाल की नाव की तरह गोते खाती रही। कई बार उसे अपनी दीनता पर रोना आ गया। एकाएक उसे स्वामी प्रभुआनंद की बातें याद हो आयी। एक बार स्वामीजी ने कहा था—"मनुष्य को जीवन में चारों आश्रमों की महत्ता को स्वीकार करना चाहिए। इससे उसकी आत्मा सुख-शांति और संतोष पाती है। आत्मा को मोक्ष की ओर ले जाने का वह पथ ढूंढता है। मनुष्य को अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करके गृहस्थी को त्याग देना चाहिए, उसे एकात मे रहना चाहिए और आत्म कल्याण के मार्ग पर निरन्तर चलकर मुरली-धर के ध्यान में लीन होकर जन्म को सार्थक करना चाहिए।"

और चांदा सेठानी ने निर्णय लिया कि वह 'मरजादा' को स्वीकार करेगी। अपने हाथ का बनायेगी, खायेगी और अस्पर्श्य रखेगी ! फिर केवल प्रभु-वंदन करेगी। श्री कृष्णं शरणं ममः…भगवान के चरणों में अपने मन को वृन्दावन कर देगी।' हाँ, वह इन सभी झूठी मोह-माया और स्वार्थों को छोड़कर मथुरा चली जायेगी। वहाँ न तो उसे किसी से हारना होगा और न हराना होगा ! राग-द्वेष, स्वार्थ, दर्प, क्रोध और ईर्ष्या से परे यह एकांत मे रहेगी।…हाँ, वह मथुरा चली जायेगी जो महाप्रभु की जन्मभूमि है।…राधा-कृष्ण की लीला भूमि…पवित्र धरा…ब्रजभूमि…

वहाँ वह अपने मन को वृन्दावन करेगी और सास-सांस को प्रभु-वंदन !

□
□

सुबह नहा-धोकर चाँदा सेठानी ने 'सेवा' की । श्रीनाथजी के चित्र की सेवा । पेड़े का टीका लगाया । कंठी को धोक दी ।

फिर उसने दामोदर को बुलाया । उसने सोचा कि शायद उसके इस निर्णय से दामोदर हथियार डाल देगा । माँ का बिछोह शायद ही वह सहे, आखिर उसने उसे सूखे में सुलाकर गीले पर स्वयं सोई है, अनेक कष्टों, अपमानों और अभावों में पाला है पर जैसे ही उसने अपना यह निर्णय सुनाया वैसे ही दामोदर ने शांति से कहा, "मैं आपके हर निर्णय का आदर करूँगा । मथुरा-वृन्दावन ब्रजभूमि है''कृष्ण की भूमि आप वहाँ रहकर गिरिराजधारी का कीर्तन करके आखिरी उम्र को सुधार लेंगी । आप चिंता न करिए ' आपकी हर जरूरत का पूरा-पूरा ध्यान रखा जायेगा । मुनीमजी महीने मे एक बार आकर आपको सभाल जायेंगे ।"

चाँदा सेठानी को दामोदर के इस उपदेश मे निर्मम क्रूरता लगी । उससे छुटकारा पाने की कुटिलता का आभास हुआ—वाह रे कलियुग ! कैसे बेटे पैदा हो गये हैं ? पर उसने अपने पर संयम रखा । सोचा—जब मैं हार गयी हू तब मुझे मैदान से हट जाना चाहिए ।'

□
□

स्टेशन !

चाँदा सेठानी मथुरा जा रही थी—सदा-सदा के लिए । श्रीकृष्ण की शरण मे । सभी आतंरिक गृह-कलह से अनजान लोग जान रहे थे कि वह वहा अपना इहलोक-परलोक सुधारेगी । उसके साथ मुनीम था । उसके साथ उसकी नौकरानी कासी थी । कासी ने सेठानी के पाँव पकड़कर रो-रोकर पहले ही कह दिया था, "आपके साथ ही मेरे जीवन की गति-मुक्ति है । मैंने अपना कष्टों भरा जीवन आपकी सेवा मे शांति से बिताया है, इसलिए शेष उम्र अकेली नही बिता सकती । मैं या तो आपके साथ चलूँगी या मर जाऊँगी ।"

चांदा सेठानी को लगा कि यही उसकी सच्ची संगिनी है। उसने उसे इजाजत दे दी। कासी खुश हो गई।

एंजिन ने सीटी दी। दामोदर माँ के चरण छूकर रो पड़ा—बच्चे की तरह बिलख-बिलखकर। चांदा की आँखें भर आयीं। सुलोचना ने चरण छूने चाहे पर चांदा सेठानी ने मना कर दिया, "नहीं, यह नाटक बंद करो ···कभी तेरी बहू भी तेरे बच्चे को तुझसे छीनेगी, तब तुझे पता चलेगा कि यह क्या दुख होता है ?"

सुलोचना कुछ बोलती कि एंजिन ने जोर की सीटी दी और गाड़ी चल पड़ी। कासी रो रही थी।

दामोदर पीछे भाग रहा था। रोता हुआ माँ···माँ कह रहा था।

चांदा सेठानी पल्लू से आँखें पोंछ रही थी।

धीरे-धीरे दामोदर अपराध-भावना से घिर गया जैसे उसने जो भी किया है वह गलत किया है।

"चलिए छोटे बाबू!" कोचवान ने कहा तो दामोदर आँखें पोंछकर स्टेशन के बाहर आ गया।

□□□

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

हिन्दी व राजस्थानी कथाकारो मे यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का शीर्ष स्थान है। विगत 25 वर्षों से अनवरत लेखन कर 'चन्द्र' ने मसिजीवी जीवन की जो पीड़ा भोगी है, उससे उनके अनुभवों के ससार का दायरा अनेक आयामों तक फैलता चला गया है। उनकी रचनायें अपने समय का दस्तावेज हैं। उनके संवेदनशील कथाकार ने दलित जीवन की पीड़ा को न केवल मुखर किया वल्कि शोषक वर्ग के बदलते चेहरो पर अपनी धारदार लेखनी के चाकू चला कर उन्हें अनावृत कर स्वयं को गहरे सामाजिक दायित्व से जोड़ा भी है। 'चन्द्र' की अनेक कृतिया साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुई हैं। उन्हे राजस्थान साहित्य अकादमी का सर्वोच्च पुरस्कार मीरा, फणीश्वरनाथ रेणु, सूर्यमल्ल, विष्णुहरि डालमियां, व. प्रे. ने. स. ए. वम्बई आदि कई पुरस्कार मिले हैं। चाँदा सेठानी इनका ताजा उपन्यास है।